चेतना विकास मूल्य शिक्षा

कक्षा 9

अनुक्रमाणिका

भाग	पाठ	नाम	पृष्ठ सं.
		वंदना	
1. मानव लक्ष्य			
	पाठ 1	समाधान	5
	पाठ 2	समृद्धि	9
2. अस्तित्व सहज व्यवस्था			
	पाठ 3	अस्तित्व सहज व्यवस्था	12
	पाठ 4	हमारी धरती एक व्यवस्था	16
	पाठ 5	पदार्थ अवस्था	19
	पाठ 6	प्राण अवस्था	22
	पाठ 7	जीव अवस्था	26
	पाठ 8	ज्ञान अवस्था	30
	पाठ 9	मानव संचेतना	35
3. अखंड समाज			
	पाठ 10	परिवार व्यवस्था	40
	पाठ 11	मानव–संबंध	43
	पाठ 12	मानव–मूल्य	49
	पाठ 13	सामाजिक पूरकता	54
	पाठ 14	उत्सव	57

4. सार्वभौम व्यवस्था

पाठ 15	मानवीय इतिहास	61
पाठ 16	मानवीय सभ्यता	66
पाठ 17	मानवीय व्यवस्था	70
पाठ 18	शिक्षा–संस्कार	73
पाठ 19	नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य	76
पाठ 20	भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया एवं जीवन क्रिया	82
पाठ 21	नीति–त्रय	86
पाठ 22	मानवीय उत्पादन–कार्य : आर्वतनशील कृषि	89
पाठ 23	विनिमय–कोष	93
पाठ 24	न्याय–सुरक्षा	96

वंदना

वंदना उनकी करें, जिनसे सुशोभित है धरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

जिनसे दिशा हमको मिली, नित मानवीय मार्ग की।
पथ मिला निश्चित हमें थी, कामना जिस मार्ग की।।
कृतज्ञता से सौम्यता की, नित्य आयी निरंतरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

जिनका है चिन्तन शुभ यही, कैसे हो मानव सुखमयी?
प्रेरणा से जिनकी है, मानव का जीवन सुखमयी।।
श्रद्धा समर्पित जिनसे आए, मानवीय परम्परा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

सबके सुख की कामना ले, रहती जिनकी कल्पना।
निकली जिनसे मानवीय पथ, हेतु निश्चित योजना।।
पूज्यता उन हेतु जिनसे, है सुसज्जित वसुन्धरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

– **प्रदीप पूरक** बिजनौर, (उ.प्र.)

पाठ–1

समाधान

इस पृथ्वी पर हम मानव कई देशों में, विभिन्न प्रकार की भाषा, आहार और जीवन शैली को अपनाए हुए रहते हैं। कद, रंग और बाहरी नाक नक्श में कई भिन्नताएं भी हैं। कोई मुस्लिम, कोई हिन्दू, कोई इसाई जैसे धर्म के साथ, स्वयं को पहचानता है। इन विभिननताओं के साथ भी, ध्यान से देखने पर हमें यह स्पष्ट होता है कि मानव शरीर रचना में अधिकाधिक समानता है। शरीर रचना में अधिकाधिक समानता वश ही हम मानव जाति को एक मानते है। मानव में समानता का देखते हुए जब हम आगे बढ़ते हैं तो पातें हैं कि हर मानव समाधान पूर्वक जीना चाहता है। हर मानव अपने परिवार में समृद्धि को अनुभव करना चाहता है। हर मानव अपने समाज में विश्वास और अभय पूर्वक जीना चाहता है। हर मानव प्रकृति के साथ तालमूल बना कर जीना चाहता है। इन सारे बिन्दुओं पर हर मानव, एक–दूसरे जैसा ही है। आइए समानता के इन बिंदुओं को और विस्तार में देखें।

समाधान, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्व के मानवीय लक्ष्य सर्वभोम है, निरंतर है। पिछली कक्षाओं में हमने देखा की हर मानव में कल्पना कर ाने की शक्ति और कर्म करने की स्वतंत्रता सहज रूप से विद्यमान हैं। कल्पना की शक्ति और कर्म करने की शक्ति को हम, स्वयं में, एक आंतरिक क्रिया के रूप में, कभी भी देख सकते हैं। आम भाषा में हम इससे सोचना, विचारना, इच्छा करना आदि की संज्ञा से इंगित भी देते हैं।

स्वंभवतः हमारी कल्पनाएँ और हमारे कर्म अर्थात क्रिया कलाप में तालमेल नहीं होता। जैसे हम कुछ कर रहे होते हैं और कुछ और सोच रहे होते हैं। कभी कुछ गहन सोच में होते हैं और साथ–साथ कई कर्म कार्य भी कर रहे होते हैं। कल्पना और कम्र की इस शक्ति के तालमेल न होने का कारण कई बार हम अनिश्चित फल परिणाम उपलब्ध हो जाता है, कोई दुर्घटना भी घट जाती है। इसके अलावा और गहन पूर्वक देखने से हम यह स्पष्ट होता हैं कि हमारी कल्पनाएं, सुव्यवस्थित नहीं होती है। एक पल हम कुछ सोच और कर रहे होते हैं और दूसरे ही पल कुछ और। सुव्यवस्था न होने के कारण, हम अपनी कल्पना में, अपनी इच्छा, अपने विचार और अपनी

आशाओं में भेद नहीं कर पातें हैं, इसलिए हमें निर्णय लेने में भी परेशानी होती है। अंततः, हम स्वयं में यह भी जांच सकते हैं कि हमारी अधिकाधिक कल्पनाएं और इसके फलस्वरूप हमारे कर्म में हम अपने वातावरण और अपने मान्यताओं के प्रभाव में रहते हैं और रह कर सकते हैं।

हमारी कल्पना की शक्ति का सदुपयोग मुख्यतः वास्तविकताओं को ग्रहण करने में और वास्तविकताओं को अनुभव करने में है। हमारे कम्र स्वतंत्राता का सदुपयोग भी इसी प्रकार, यथार्थ पूर्वक जीने के लिए है।

यथार्थ पूर्वक होने का अर्थ को हम चार बिंदु में समझ सकते हैं। मानवीय आचरण, मानवीय व्यवहार, मानवीय कार्य और मानवीय व्यवस्था में भागीदारी। चरित्र पूर्वक, नीति और मूल्य के साथ जीना को मानवीय आचरण करते हैं। मानव के साथ संबंध पूर्वक व्यवहार को मानवीय व्यवहार, शेष प्रकृति के साापि दया पूर्वक और अवर्तानशील विधि से कार्य करने को मानवीय कार्य और व्यवस्था के आयाम को मजबूत करना, व्यवस्था में भागीदारी है। यह हमारे कर्म स्वतंत्रता की शक्ति का सदुपयोग है।

वास्तविकताओं को ग्रहण करना और उन्हें अनुभव करने का अर्थ को हम 2 बिंदु में समझ सकते हैं। संवेदना और मूल्य। संवेदना को हम शरीर की सीमा में इन्द्रियों के साथ ग्रहण करते हैं। इसके साथ–साथ हम हर वस्तु में उसकी उपयोगिता को भी अनुभव करते हैं, जिसको हम वस्तु मूल्य कहते हैं। अन्य मानव के साापि, हम संबंध मूल्य, जैसे विश्वास सम्मान, स्नेह, ममता, वात्सल्य, कृतज्ञता, ओर गौरव जेसे मूल्य का अनुभव करते हैं। स्वयं में हम सुख, शांति, संतोष और आनंद जैसे मूल्य का अनुभव करते हैं और इन्हें हम जीवन मूल्य करते। यहहमारी कल्पनाशीलता का सदुपयोग है। इस प्रकार संवेदना रूपी वास्तविकता का ग्रहण करना और मूल्य रूपी बड़ी वास्तविकता को अनुभव करना हमारी कल्पनाशीलता का सहज सदुपयोग है।

हमारी कल्पना की शक्ति और कम्र स्वतंत्रता की शक्ति के सदुपयोग करने की पात्रता और योग्यता के साथ हम समाधान की स्थिति को प्राप्त होते हैं। ऐसा घटित हो जाने की परिस्थिति में हमारे कल्पना और कर्म की शक्ति में तालमेल और सुव्यवस्था होती है और हम निश्चित फल परिणाम के अधिकार को पा लेते हैं। सह स्वयं में व्यवस्था है। हम सभी सहज रूप से चाहते हैं। यह समाधान है।

हम सभी मानव किसी न किसी परिवार के सदस्य हैं माता–पिता, भाई–बहन, मित्र, गुरु, पति–पत्नी संबंध को हम सभी मानव स्वीकारते हैं। परिवार में ही शिशु का पालन पोषण होता है, बालक संस्कारित होते हैं, एक युवा शिक्षा ग्रहण करता है, पति–पत्नी, पुत्र–पुत्री को जन्म देते हैं, भाई बहन सहयोग करते हैं, माता–पिता और वृद्ध की सेवासुश्रा – होती है इत्यादि। यह सभी क्रिया कलाप, एक परिवार व्यवस्था के अभिन्न पहलु हैं। परिवार व्यवसाि में समाधानित मानव के रूप में संबंध और संस्कार की उपलब्धता और इसके साथ–साथ सेवा और साधन की आवश्यकता हमेशा ही रहती है। साधन की आवश्यकता को पूरी करने के लिए श्रमपूर्वक उत्पादन कार्य करना, शरीर का सदुपयोग है और शरीर का एक महत्वपूर्ण उपयोग भी। इसके साथ–साथ, परिवार की साधन की आवश्यकता, हमारे कार्य उत्पादन में उत्पाद की मर्यादा सीमा है। परिवार व्यवसाि में ंहम इस प्रकार स्वयं मं समाधान, सेवा और श्रम पूर्वक व्यवसाय के लिए कार्यरत रहते हैं। हमारा परिवार खुशहाल और सुव्यस्थित रहता हैं यह हम सभी की चाहना है। परिवार व्यवस्था की इस स्थिति को हम समृद्धि कहते हैं।

परिवार, समाज के अभिन्न अंग है और हम सभी इससे सहज स्वीकारते है। एक दूसरे के साि वस्तु का श्रम मूल्य के आधार पर विनिमय, स्वास्थ्य पूर्वक जीने में एक दूसरे का सहयोग मानव वंशज में शिक्षा और संस्कार की सूत्रता, एक दूसरे के सुख को व्यवहार में सुनिश्चितता और भौतिक साधन के अवर्तानशील उत्पादन ओर उत्पाद की सुरक्षा और सदुपयोग जैसे कई पहलु है, जो एक सुव्यस्थित समाज के पहलु है। समाज में अधिकाधिक मानव समाधान को प्राप्त, अधिकाधिक परिवार में समृद्धि इस अखंड समाज को स्थापित करने का आधार है। यह हम सभी मानव की जिम्मेदारी पूर्वक ही स्थापित होता हैं गैर जिम्मेदार होने पर हम अन्य मानव का शोषण, भागीदारी से विमुख और स्वार्थ और मोह पूर्वक अपनी सीमित क्रियाकलापों में जीते हुए पायें जातें हैं। जाति, समुदाय ओर अन्य सीमित धरनों में हम अपने को बाँध लेते हैं। इस प्रकारकी अज्ञानता और विमुखता हमारी ओर हम सभी के जीनी की परिसिाति को विषम बनाता है और हम अपनी व्यवस्था को अपने परिवार व्यवस्था को और अपने सामाजिक व्यवस्था की पूर्ण क्षमता को प्राप्त करने में असफल होने लगते हैं। एक खुशहाल और अखंड समाज हम सभी की सहज चाहना है। समाज की इस स्थिति को अभय कहते हैं।

हमारा पूरा मानव समाज, प्रकृति के साथ इस पृथ्वी पर स्थित है। प्रकृति और अस्तित्व के साथ तालमेल, हमारा और आने वाली मानव वंशज के लिए एक अनिवार्यता है, जिसका तिरस्कार

होने पर हम आज अपनी स्थिति ओर परिस्थिति में अनेक प्रकार के दुष्प्रभाव जैसे अनेको बीमारियो, घटते बढ़ते और असंतुलित ऋतु चक्र, जीव जानवर वंश का लुप्त होना, इत्यादि को देख रहे हैं प्रकृति में चारों अवस्थाओं का सहज संतुलन एक आवश्यक पहलु है।

अवर्तानशील उत्पादन, ऋतु चक्र का संतुलन, जनसँख्या और वंश मात्रा में मर्यादा, पृथ्वी की भूगर्भीय पदार्थ के उपयोग में पर्यादा ओर तालमेल आदि, ऐसे कई बिंदु है जिनके साथ हम मानव को पूरक होना अनिवार्य है। यह मानव परंपरा का इस पृथ्वी पर सफल होने का आधार हैं यह हमारा सहज चाहना है। यह सह अस्तित्व है।

समाधान, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्व, हम सभी के लक्ष्य है। यह संपूर्ण अस्तित्व, एक व्यवस्था है, जिसमें हम मानव को अपने जीने के हर स्तर पर मानवीय व्यवस्था में संकल्प की क्षमता को जागृत करना और इस क्षमता को जीने में प्रमाणित करना है। यह हम सभी मानव का प्रयोजन है।

अभ्यास व अध्ययन

1. समाधान किसे कहते है?
2. विकास क्रम क्या है?
3. अखंड समाज का अर्थ क्या है?

पाठ–2

समृद्धि

अब तक हम समझे हैं कि समृद्धि प्रत्येक मानव का एक लक्ष्य है। यह लक्ष्य हर समय बना रहता है। समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व मानव लक्ष्य है।

समृद्धि भौतिक वस्तुओं से होती है। भौतिक वस्तुएँ उत्पादन पूर्वक प्राप्त होती हैं। सभी प्रकार के उत्पादन से, जो भी वस्तु प्राप्त होती है उसे दो वर्गो में रखा जाता है

(अ) उपयोग के लिए (ब) उत्पादन के लिए

(अ)उपयोग के लिए : जैसे हमने अन्न उत्पादन किया, यह उपयोग के लिए होता है। इसी प्रकार वस्त्र, मकान, कोई वाहन का उत्पादन भी उपयोग के लिए होता है।

(ब)उत्पादन के लिए : जैसे हम हल का उत्पादन करते हैं। इसका उपभोग नहीं होता, यह उत्पादन के लिए प्रयुक्त होता है। आज ऐसी सैकड़ों वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जो आगे उत्पादन की वृद्धि के लिए सहायक होते हैं। जैसे ट्रेक्टर–यह खेत जोतने, खोदने, मेड़ बनाने, मिट्टी का परिवहन करने के कार्य में प्रयुक्त होता है। ये अग्रिम उत्पादन के लिए आधार होते हैं। अतः ये दोनो प्रकार के उत्पादन समृद्धि के लिए ही हैं।

कुछ उत्पादन मानव समाज में प्रचलित हो गए हैं जिनके प्रयोग से मानव समाज को क्षति ही होती है। इसे हम सामयिक या विध्वांसात्मक वस्तुएँ कहते हैं। इसमे प्रधानतः युद्ध में प्रयुक्त होने वाले विस्फोटक एवं उनके परिवहन के लिए उपयोगी वाहन आते हैं। ये मानव समाज की समृद्धि में सहायक नहीं हैं। समृद्धि के लिए आहार अनिवार्य एवं प्रारंभिक वस्तु है। प्रत्येक मानव को प्रतिदिन आहार की आवश्यकता होती है एवं 3–4 बार भोजन की आवश्यकता होती है। शरीर के पोषण के लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। आहार का स्रोत धरती है एवं धरती में कृषि होती है। कृषि कार्य ही आहार उत्पादन का सर्व प्रमुख स्रोत है।

कृषि में बीजों को बोया जाता है एवं उत्पाद को एकत्रित किया जाता है। उदाहरण के लिए वनभूमि में बीज पककर भूमि में गिर जाता है। जब अनुकूल परिस्थिति आती है तब वह अंकुरित होकर बढ़ता है। समय पर उसमें फूल–फल आते हैं। परिपक्व हो कर बीज बनता है। इस प्रक्रिया का अध्ययन करने पर हम समझते हैं कि पका हुआ बीज एक से अधिक होता है। यह प्रकृति की व्यवस्था है। हमेशा बीज पककर कई गुणा बीज तैयार करता है ताकि आगे कुछ बीज उसकी परंपरा को बनाए रखें। इस प्रकार मानव के किसी भी प्रकार के श्रम के बिना ही कई गुणा अन्न उपजने की प्राकृतिक व्यवस्था है।

जब मानव इस प्रक्रिया में शामिल होता है तब सर्व प्रथम इस प्रक्रिया को समझता है एवं न्यूनतम श्रम के द्वारा पहले से कई गुणा अधिक अन्न प्राप्त करता है। बीज के लिए अनुकूल भूमि का चुनाव, समय पर बीज बोना, समय पर सिंचाई, कीटों से रक्षा एवं समय पर कटाई कृषि के मुख्य अंग है। जैसे एक आम का पौधा उगने पर उसकी सुरक्षा के लिए थोड़ा सा ही श्रम करने पर पेड़ बड़ा हो जाता है। प्रत्येक वर्ष 2–3 बार सींचाई करने पर, 3–4 वर्ष में सींचाई की अनिवार्यता समाप्त हो जाती है। अगले 2–3 वर्ष में फूल–फल मिलने लगते हैं। फल कुछ किलो से लेकर सैकड़ो किलो तक होता है। ऐसी पैदावार 40–50 वर्ष तक बनी रहती है। इसकी छाया, सूखी पत्तियाँ; सभी मनुष्य के लिए उपयोगी है। सूखी लकड़ी कई महीनों के लिए ईंधन कार्य में प्रयुक्त होती है। कई लोग आम वृक्ष की छाया में गाय बाँधते हैं। गाय को छाया मिलती है, आम वृक्ष को गाय के गोबर–गोमूत्र से खाद मिलता है। मानव के न्यूनतम श्रम से दोनो एक दूसरे का पोषण करते हैं। इस प्रकार हम समझते हैं कि आहार प्रमुख वस्तु है समृद्धि के लिए एवं इसके लिए न्यूनतम श्रम की आवश्यकता है। वस्त्र, आवास, दूरसंचार के लिए, क्रम से, अधिक श्रम की आवश्यकता होती है।

समृद्धि के साथ महत्वपूर्ण तथ्य है साथ–साथ जीना। इस तरह कई मनुष्य साथ–साथ जीकर अपनी आवश्यकताओं को आसानी से पूरा कर सकते हैं। इसी प्रकार जब तीन पीढ़ी या उससे अधिक लोग परिवार में एक साथ रहते हैं तो इसमें और सफलता की संभावना बढ़ जाती है। एक पीढ़ी का श्रम अग्रिम पीढ़ी को मिलने लगता है। कृषि प्रक्रिया में खेत बनाने की विधि में यह स्पष्ट पता चलता है कि जंगल को प्रथम बार खेत में परिवर्तित करना श्रम साध्य कार्य है। नियम पूर्वक कृषि करने पर खेत के पोषक तत्व बने रहते हैं एवं खेत की उर्वरता बढ़ती है एवं उच्चतर स्तर

पर पहुँच जाती है। इस प्रकार उच्चतम गुणवत्ता की कृषि भूमि, श्रेष्ठ बीज जो प्रकृति से दीर्घकालीन प्रयास से चुने गए अग्रिम पीढ़ी को मिलता है। फल वृक्षों में 'कलमी' प्रजाति के वृक्ष एक बार बनाए जाने के पश्चात् सर्व सुलभ होते हैं। इसी प्रकार दुधारू पशुओं की श्रेष्ठ प्रजाति अग्रिम पीढ़ी को मिलती रहती है जो समृद्धि के लिए आधारभूत वस्तु है। इस प्रकार पीढ़ी से पीढ़ी मानव परम्परा में समृद्ध होने की संभावना बढ़ती है।

मानव में समृद्धि से प्रकृति में भी पूरकता बनी रहती है। यदि प्रकृति से पूरकता नष्ट हो जाए तो यह समृद्धि नहीं होगी। समृद्धि की परंपरा नहीं बन पाएगी।

मनुष्य की समृद्धि के लिए कृषि एवं पशुपालन अनिवार्य है। कृषि की सफलता के लिए जलवायु सन्तुलन, जलवायु सन्तुलन के लिए वन–खनिज का संतुलन अनिवार्य है। पर्यावरण के संतुलन से वर्षा, शीत–उष्णता का अनुपात निश्चित बना रहता है। इनके सन्तुलन से ही कृषि सफल होती है। इस प्रकार कृषि की सफलता के लिए प्रकृति की पूरकता अनिवार्य है।

समृद्धि भौतिक वस्तुओं से होती हैं। वस्तुएँ उत्पादन द्वारा प्राप्त होती है। अतः समृद्धि के लिए उत्पादन एक अनिवार्य कार्यक्रम है। उत्पादित वस्तुओं का विनिमय किया जाता है। विनिमय प्रक्रिया में कम वस्तु देकर अधिक वस्तु लेने की संभावना बनती है। इन्हें हम लाभ और हानि कहते हैं। लाभ का तृप्ति बिन्दु नहीं होता अर्थात कितना लाभ लेने पर मानव तृप्त होगा यह तय ही नहीं हो सकता। इसलिए लाभ से समृद्धि संभव नहीं है क्योंकि समृद्धि तृप्ति है।

अभ्यास व अध्ययन

1. उत्पादित वस्तुओं के दो वर्ग कौन से है?
2. मानव समाज को क्षति पहुँचाने वाले उत्पादन कौन से है?
3. समृद्धि के लिए साथ–साथ जीना क्यों आवश्यक है?
4. प्रकृति में हम किस तरह से समृद्धि देखते हैं?
5. "लाभ से समृद्धि संभव नहीं है" – इसे स्पष्ट कीजिए।

पाठ–3

अस्तित्व सहज व्यवस्था

अस्तित्व में अनंत इकाईयाँ हैं जिन्हें उनके रूप, गुण, स्वभाव ओर धर्म के आधार पर ही मानव संपूर्णता में समझता है। ये अनंत इकाईयाँ व्यापक–सत्ता में संपृक्त हैं। सत्ता में संपृक्त प्रत्येक इकाई निरंतर क्रियाशील है – जैसे मानव, पेड़–पौधे, हवा, जल, पशु–पक्षी, ग्रह–गोल आदि क्रियाशील हैं। क्रियाशीलता–वश इकाईयाँ स्वयं में व्यवस्थित बने रहती हैं (जैसे पत्थर, जल इत्यादि) या स्वयं में व्यवस्थित बने रहने के लिए प्रयासरत हैं (जैसे मानव)। पत्थर, जल, पेड़–पौध े स्वयं व्यवस्था में हैं और धरती जैसी बड़ी व्यवस्था को बनाए रखने में भी भागीदार हैं। मानव भी स्वयं में व्यवस्थित (समझदार) होने के प्रयास के साथ–साथ समाज में भागीदार (ज़िम्मेदार) होने के लिए कार्यरत है। अतः सत्ता में संपृक्त होने से इकाईयाँ स्वयं में व्यवस्था हैं और अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदार हैं।

पेड़–पौधे, जल, वायु, मिट्टी, पत्थर, जानवर, मानव – ये सभी इकाईयाँ साथ–साथ हैं। अर्थात इनके 'होनेपन' के लिए एक दूसरे का होना भी आवश्यक है। जैसे पेड़–पौधों के होने के लिए मिट्टी का होना अनिवार्य है। पशु–पक्षी के अस्तित्व के लिए पानी का होना अनिवार्य है। मानव के बने रहने के लिए पेड़–पौधे (आहार, आवास के लिए), हवा, पानी आदि का होना आवश्यक है। अर्थात अस्तित्व में कोई भी इकाई अकेले नहीं है। प्रत्येक इकाई दूसरी इकाई के साथ किसी न किसी निश्चित रूप से संबंध में है। दूसरे शब्दों में, इन सभी इकाईयों का अस्तित्व सह–अस्तित्वपूर्वक है। सत्ता में संपृक्त होने के कारण ही यह सह–अस्तित्व संभव है। अर्थात सत्ता में इकाई की संपृक्ता ही सह–अस्तित्व है।

प्रत्येक इकाई का सत्ता में संपृक्त होने का तात्पर्य है कि हर इकाई व्यापक–सत्ता में भीगी, डूबी, घिरी है। जैसे रुई को पानी में डालने से रुई पानी में भीग जाती है या पानी रुई के आर–पार होता है। वैसे ही झाकईयाँ सत्ता में भीगी हैं अथवा सत्ता इकाईयों के आर–पार है। अर्थात सत्ता पारगामी है। यह पारगाम्यता मानव समझ व अनुभव कर सकता है। जैसे हवा में हाथ हिलाने से हवा के कण विस्थापित होते हैं परंतु सत्ता विस्थापित नहीं होती क्योंकि सत्ता पारगामी

है। एक इकाई के हिलने से दूसरी इकाई विस्थापित होती है परंतु पारगामी सत्ता इकाई के स्थानांतरण में कोई बाधा नहीं है। अर्थात यह समझ में आता है कि सत्ता में कोई परिवर्तन नहीं होता, सत्ता में कोई क्रिया नहीं होती। अतः सत्ता क्रियाशून्य भी है।

इकाईयों का सत्ता में भीगे होने से, प्रत्येक इकाई बल संपन्न अथवा ऊर्जित है। इसी कारण इकाईयाँ 'निरंतर' क्रियाशील हैं। सत्ता क्रियाशून्य है परंतु इकाईयों के उसमें भीगी होने से इकाईयाँ निरंतर क्रियाशील अथवा ऊर्जित हैं। अर्थात सत्ता ही ऊर्जा है। यह अस्तित्व सहज व्यवस्था है।

सत्ता के पारगामी होने से एक इकाई का प्रभाव दूसरी इकाई तक बिना कोई अवरोध के पहुँचता है। जैसे लोहे के टुकड़े के एक सिरे को गर्म करने पर ऊष्मा का प्रभाव लोहे के दूसरे सिरे व आस–पास हवा के कणों तक पहुँचता है। यह प्रक्रिया अस्तित्व सहज है क्योंकि सत्ता एक पारगामी वस्तु (अर्थात वास्तविकता) है। इसी तरह सूर्य की किरणें भी धरती तक बिना अवरोध के पहुँचती हैं। सत्ता इकाईयों के ऊष्मा, दाब, ध्वनि, चुम्बकीयता जैसे गुणों से प्रभावित नहीं होती है। यह वास्तविकता, सत्ता की क्रियाशून्यता को भी इंगित करता है।

भीगे होने के साथ–साथ, सत्ता में इकाईयाँ घिरी हुई हैं। जैसे हम जिस पुस्तक को अभी पढ़ रहे हैं – उसमें और मेज़ में, मेज़ और कलम में, कलम और हमारे हाथ में अंतर स्पष्ट रूप से दिखता है। अर्थात सत्ता में घिरे होने से इकाईयों का निश्चित आकार होना हमें समझ में आता है। दूसरे शब्दों में, इकाई की लंबाई–चौड़ाई गहराई निश्चित है। यह इकाई में नियंत्रण है। अंततः सत्ता में घिरे होने से इकाईयों में नियंत्रण दिखता है। साथ ही, हम इकाईयों के आकार को आँखों से देख पाते हैं तो यह समझ में आता है कि सत्ता पारगामी के अलावा पारदर्शी भी है। यह अस्तित्व में व्यवस्था है।

इकाईयों का सत्ता में भीगे और घिरे होने से यह समझ में आता है कि इकाईयाँ सत्ता में डूबी भी हैं। अर्थात सत्ता के बाहर कोई इकाई नहीं है। सत्ता हर स्थान पर है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ सत्ता न हो। अर्थात सभी इकाईयाँ जैसे ग्रह–गोल, सौर मंडल व्यापक–सत्ता में स्थित हैं। साथ ही, डूबे होने से इकाईयों में गतिशीलता निश्चित है।

अतः इकाई के सत्ता में भीगे, घिरे, डूबे होने से क्रमशः इकाई ऊर्जित, नियंत्रित व गतिशील है।

यह अस्तित्व सहज व्यवस्था है। इसी तरह इकाई के सत्ता में संपृक्त अर्थात भीगे, घिरे और डूबे होने से इकाई क्रियाशील है। क्रियाशीलता को हम श्रम, गति और परिणाम के संयुक्त रूप में समझते हैं। यह हम अस्तित्व की सबसे छोटी इकाई – परमाणु से ले कर बड़ी इकाईयों – ग्रह–गोल, सौर मंडल इत्यादि में भी समझ सकते हैं।

परमाणु की व्यवस्था को देखें तो परमाणु में बने रहने के प्रयास को हम श्रम कहते हैं। जैसे हाईड्रोजन के पारमाणु–अंश का हाईड्रोजन परमाणु के गठन के रूप में बने रहना श्रम की स्थिति है। श्रम के साथ–साथ परमाणु में गति भी निश्चित है। अपनी व्यवस्था बनाए हुए अन्य परमाणुओं के साथ व्यवस्था में भागीदार होने को गति के रूप में पहचानते हैं। जैसे हाईड्रोजन का औक्सीजन के साथ भागीदार होने से पानी बनता है। यह इन परमाणुओं की निश्चित व स्वभाव गति है।

श्रम और गति के अतिरिक्त परमाणु में परिणाम होता है। परिणाम अर्थात परमाणु के गठन में परमाणु–अंश की निश्चित मात्रा। इस मात्रा से परमाणु का आचरण निर्धारित होता है। जैसे दो परमाणु–अंश (परिणाम) के परमाणु का हर काल और हर स्थान में एक जैसा ही आचरण व्यक्त होता है।

जिन परमाणु के परिणाम में परिवर्तन संभव है अर्थात मात्रात्मक परिवर्तन संभव है उन्हें गठनशील परमाणु या जड़ इकाई कहते हैं। जिन परमाणु के गठन में कोई मात्रात्मक परिवर्तन संभव नहीं है, उन्हें गठनपूर्ण परमाणु या चैतन्य इकाई कहते हैं। अतः गठनपूर्ण परमाणु में परिणाम का अमरत्व हो जाता है। दूसरे शब्दों में, चैतन्य इकाई की कभी विरचना या मृत्यु नहीं होती। वह निरंतर बना रहता है।

परमाणु की सुनियोजित व्यवस्था, जिसमें अंशों की घटने–बढ़ने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है, उसे ही गठनपूर्ण कहते हैं। इस स्थिति में परमाणु के मध्य में और उसके सभी ओर गति–पथ में परमाणु–अंशों की संख्या में संतुलन और समन्वय होता है। यह परमाणु की व्यवस्था में गठन की पूर्णता है, जो कि अस्तित्व सहज है। गठनपूर्ण परमाणु, चैतन्य पद में गणित होता है। इसे हम जीव और ज्ञान अवस्था में सहज रूप से पहचानते हैं।

गठनपूर्ण परमाणु में परमाणु–अंशों का आपस में संगीतमय रूप में व्यवस्था बनाने के प्रयास को

श्रम कहते हैं। आपस में संगीतमय स्थिति बनने पर परमाणु की व्यवस्था में श्रम से विश्राम की स्थिति होती है। यही चैतन्य इकाई में क्रियापूर्णता है अर्थात गठनपूर्ण परमाणु की व्यवस्था में हर अंश की क्रिया अन्य अंशों के साथ में ताल–मेल पूर्वक है। गठनपूर्ण परमाणु अथवा चैतन्य इकाई में यह संगीतमय पूर्णता को हम मानव में समाधान की स्थिति के रूप में मूल्यांकित करते हैं।

चैतन्य इकाई की अन्य चैतन्य इकाई की परस्परता में, ऐसी गति जिस गति–वश अन्य गठनपूर्ण परमाणु भी विश्राम की स्थिति की और गतित होते हैं – इसे आचरणपूर्णता कहते हैं। आचरणपूर्णता, मानव में समाधान को अपने जीने के हर आयाम में प्रमाणित कर लेने की स्थिति के रूप में पहचानते हैं।

इस प्रकार गठनपूर्ण परमाणु की व्यवस्था के तीनों आयामों को और इन तीनों आयामों में पूर्णता को हम मानव के रूप में चैतन्य पद, समाधान और सर्वतोमुखी समाधान के रूप में स्वीकारते हैं। चैतन्य पद में गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता और आचरपूर्णता का क्रम अस्तित्व सहज है। क्रियापूर्णता ही स्वयं में व्यवस्था है और आचरणपूर्णता ही समग्र व्यवस्था में भागीदार होना है। अर्थात ये पूर्णता ही मानव में निश्चित आचरण का द्योतक है।

अभ्यास व अध्ययन

पाठ 4

हमारी धरती एक व्यवस्था

हमारी धरती एक व्यवस्था हैं और पदार्थ, प्राण, जीव अवस्था के साथ मानव भी इस व्यवस्था का भाग है।

इतनी विशाल पृथ्वी पर मानव अलग स्थानों पर अलग महाद्वीपों पर रहते हैं। मानव शरीर की बनावट उस स्थान व उसके जलवायु के अनुरूप है। जैसे जहाँ जहाँ ज्यादा सूर्य कि रौशनी पड़ती है वहाँ मनुष्य कि त्वचा का रंग और गहरा होता जाता है। पहाड़ी इलाकों में मनुष्य के शरीर का कद थोड़ा छोटा दिखता है। ध्यान से देखने से यह स्पष्ट होता है कि हमारे शरीर कि बनावट पृथ्वी पर हमारी स्थान व जलवायु से प्रभावित होकर वहाँ के अनुरूप हो जाती है जिससे ज़्यादा सहजता से मानव वहाँ रह पाते हैं। यह भी एक व्यवस्था है।

मानव भी इस व्यवस्था को पहचानकर जलवायु की अनुरूप उपयुक्त वेश–भूषा व निवास बनाया। अपनी आस–पास के पदार्थ अवस्था के रूप–गुण को पहचानकर हमने उपयुक्त निवास बनाये, अधिक गर्मी वाले स्थानों पर मानव निवास को इस प्रकार के बनाते हैं जिससे कम ऊष्मा घर में प्रवेश कर सके। ज्यादा सर्दी वाले स्थानों में मानव ने ऐसे निवास बनाये जिनसे घर के भीतर ज्यादा रौशनी व ऊष्मा आ सके। सफ़ेद रंग सूर्य कि किरणों को प्रतिबिंबित कर देते हैं जिससे गर्मी कम होती है। गहरे रंग सूर्य कि किरणों को समाहित कर लेते हैं जिससे ऊष्मा बढ़ती है। इस कारण अधिक गर्मी वाले स्थनों पर हमें यह देखने को मिलता है कि सफ़ेद रंग का उपयोग मानव ने निवास व वेशभूषा में अधिक किया है। क्षेत्र के अनुरूप, मानव निवास के निर्माण के लिए उस क्षेत्र में मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, धातु उपलब्ध हैं और मानव कि आवश्यकता से अधिक उपलब्ध है। इनको पहचान कर इनका उपयोग करते हुए आये हैं। इसी प्रकार अलग जलवायु में जीव अवस्था के साथ–साथ मानव को भी उस जलवायु के अनुसार उचित भोजन व आहार प्राणावस्था के माध्यम से उपलब्ध है, जो ऋतु अनुसार मानव शरीर को स्वस्थ्य रखने में महत्वपूर्ण भागीदारी करता है।

मानव धरती से अलग नहीं है। शरीर प्राण कोशिकाओं से बना है और पोषण प्राण अवस्था से उपलब्ध आहार से होता है। मानव की सारी आवश्यकताओं कि पूर्ति प्रकृति की अवस्थाओं से ही हो सकती है और ये संसाधन व्यवस्थित रूप से उपलब्ध हैं। जैसे पदार्थावस्था के द्वारा निवास, उत्पादन के लिए उपकरण, दूरश्रवण, दूरदर्शन दूरगमन के लिए उपयुक्त वस्तुओं की आवश्यकता पूरी होती है।

प्राणावस्था से आहार की और ऊर्जा; ईंधन की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। जैसे आहार – फल, सब्ज़ी, अन्न के रूप में उपलब्ध है और खेती के माध्यम से मानव प्राणअवस्था व मिट्टी की उपज को बढ़ाकर इन आवष्यकताओं को पूरा करता रहा है।

पशु–पालन, उत्पादन, कृषि आदि में पेश अवस्थाओं के साथ भागीदारी करते हैं और यह अवस्थाएँ हमारे पूरकता के लिए उपयोगी हैं। मानव भी इन अवस्थाओं को समृद्ध करते हैं। जैसे गाय के गोबर का कृषि में उपयोग करते हैं, इससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ती है जिससे मिट्टी में गुणात्मक परिवर्तन होता है। इससे फसल और अधिक मात्रा में होती है। यही फसल मनुष्य और पशु दोनों का भोजन है और इससे शरीर पुष्ट होते हैं। गाय यही खाती है और फिर मानव गाय के गोबर का फ़िर खेतों में उपयोग करतें हैं और यह एक अवर्तानशील चक्र है और एक दूसरे को पुष्ट करती हैं। मानव इस चक्र की गति और फैलाव में भूमिका निभाते हैं। समझदार मानव धरती की सतह पर तीनों अवस्थाओं के साथ आवर्तनशीलता बनाये रखते हैं।

जैसे कि हमने पहले पढ़ा है कि धरती की सतह पर ही मानव की सारी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। सतह पर मानव निवास के लिए अनुकूल स्थान व जल वायु है और विभिन्न जल के स्रोत व ऊर्जा के स्रोत उपलब्ध हैं। ऊर्जा की आवश्यकता समृद्धि–उत्पादन, दूरगमन, दूरश्रवण व दूरदर्शन के लिए है। ऊर्जा की पूर्ति के लिए हम ऊर्जा के आवर्तनशील स्रोत जैसे बिजली के लिए सौर ऊर्जा व प्रवाह बल, ईंधन के लिए वनस्पति तेल आदि सतह पर भरपूर मात्रा में उपलब्ध है। धरती पर यह व्यवस्था है कि प्राण अवस्था, जीव अवस्था व मानव की आवश्यकता से ज्यादा ऊर्जा, बिजली, भोजन सतह के स्रोतों से ही उपलब्ध किया जा सकता है, जिसके पशचात भी इन संसाधनों की उपलब्धि होगी।

सतह पर जल के स्रोत नदी, तालाब, समुद्र है और ये वर्षा से नदी, तालाब भरते हैं।हिम भी

पहाड़ों व ध्रुवों के पास पड़ती है। पहाड़ों पर जो हिम जमती है उससे ग्रीष्म ऋतु में नदियाँ बहती हैं। सतह पर वर्षा का पानी इकट्ठा कर सभी मानव व प्राण व जीव अवस्था की जल की आवश्यकता को सुनिश्चित कर सकते हैं।

तीनों अवस्थाओं की विभिन्न आवश्यताओं की पूर्ति, पूर्ति के समय आवर्तनशीलता का बने रहना व समृद्धि होना धरती की व्यवस्था का प्रमाण है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि धरती पर हर अवस्था या इकाई के आने से पहले से ही उसकी आवश्यकता की पूर्ति, समृति व संवर्धन के लिए व्यवस्था हैं।

पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था व जीव अवस्था का आचरण व भागीदारी धरती की व्यवस्था में निश्चित है। मानव इसको समझते हैं और भागीदारी कर स्वयं को व अन्य अवस्थाओं को समृद्ध करते हैं।

अभ्यास व अध्ययन

पाठ–5

पदार्थ अवस्था

अब तक हमने पदार्थ अवस्था के रूप, गुण, स्वभाव, धर्म के बारे में पढ़ा। पदार्थ अवस्था के अनेक नियमों को समझा, पदार्थ में व्यवस्था को जाना और अपने से बड़ी व्यवस्था यानि प्राण अवस्था व जीव अवस्था में भागीदारी के बारे में जाना। पदार्थ अवस्था, प्राण अवसथा और जीव अवस्था के अन्तर को समझा अब इसे आगे समझते हैं।

पदार्थ अवस्था मिट्टी, पानी, हवा, इत्यादि को देखते हैं तो उस का स्थान निश्चित पाते हैं। जहाँ भी एक प्रकार का पदार्थ मिलता है वह उसी जगह के लिए ही पूरक है। जैसे कोयला, लोहा, हीरा, खनिज तेल इत्यादि, धरती के भूगर्भ में ही मिलते हैं और यह धरती के भूगर्भ की व्यवस्था बनाए रखते हैं। पानी, धरती की सतह पर ही मिलता है, उपजाऊ मिट्टी भी धरती की सतह पर ही मिलती है, नीचे भूगर्भ में नहीं। वायु भी धरती की सतह के ऊपर वायु मंडल में ही मिलती है। यह सब हमेशा इन निश्चित स्थानों में ही मिलते हैं। पदार्थ का स्थान निश्चित होने से, वह धरती की व्यवस्था बनाए रखने में भागीदार है।

किसी भी पदार्थ को उसके निश्चित स्थान से निकालकर, अगर किसी और जगह ले जाते हैं तो उस जगह की व्यवस्था तो खराब होती ही है – साथ में नई जगह की व्यवस्था भी खराब होती है। जैसे धरती के भूगर्भ में कोयला, खनिज तेल मिलता है। यह सब पदार्थ धरती की सतह की गर्मी पचाते हैं। अब अगर हम कोयले को धरती के भूगर्भ से निकालकर, ऊपर धरती की सतह में लाते हैं तो पहले तो धरती के भूगर्भ की व्यवस्था खराब होती हे, यानि कि धरती की गर्मी पचाने की शक्ति कम हो जाती हैं। फिर कोयला जब ऊपर सतह पर लाते हैं और वह वायु मंडल के आक्सीजन के संपर्क में आता है तो कोयला जलाया जाता है, फिर आग पकड़ लेने से जो धुआँ होता है, उससे वायुमंडल में भी ऐसे विरल पदार्थ हो जाते हैं जिससे धरती की सतह पर अव्यवस्था पैदा होती है। अतः कोयला का धरती की सतह पर होने से, धरती पर/में अव्यवस्था होती है और कोयला का निश्चित स्थान–भूगर्भ में होने से धरती की व्यवसाि बनी रहती है। ऐसे

ही लोहा, खनिज तेल इत्यादि भी धरती की सतह की गर्मी पचाते हैं। इससे धरती का तापमान संतुलित रहता है। पदार्थ अवस्था की अनेक इकाईयों का अपने निश्चित स्थान पर होना एक व्यवस्था है।

पदार्थ का एक और महत्वपूर्ण गुण है उनका अम्ल, क्षार और लवण होना। अम्ल पदार्थ को हम उसके खट्टे होने से पहचानते हैं। जैसे कि गंधक अम्ल, नमक का तेज़ाब। क्षार पदार्थ को हम उसके कड़वे होने से – जैसे कि चूना, सोडा इत्यादि। अम्ल और क्षार भेदक होते हैं। यह दोनो एक दूसरे के सम्पर्क में उदासीन हो जाते हैं और लवण बन जाते हैं। धरती की व्यवस्था बनाए रखने के लिए अम्ल और क्षार का संतुलन होना आवश्यक है। जब पदार्थ अवस्था में अम्ल और क्षार की मात्रा बड़ जाती है तो पानी के द्वारा वह लवण नदियों में और नदियों से समुद्र तक पहुँच जाता है। समुद्र के पानी का नमकीन होने का कारण यह ही है। मिट्टी में अम्ल और क्षार का संतुलन रहता है तो प्राण अवस्था के लिए अनुकूल वातावरण रहता है। इस व्यवस्था में पेड़–पौधे आसानी से उगते हैं।

मिट्टी के साथ–साथ जल, वायु और अन्य पदार्थ, प्राण अवस्था को पोषण के लिए अनिवार्य तत्व हैं। इस तरह प्राण अवस्था से पदार्थ अवस्था संवर्धित होती है। पदार्थ अवस्था और प्राण के अन्तर संबंध में हम आवर्तनशील व्यवस्था को देखते हैं। यह एक दूसरे के लिए पूरक भी हैं।

पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था और जीव आवस्था के बाद की अवस्था है – ज्ञान अवस्था। ज्ञान अवस्था में हम मानव आते हैं। पदार्थ अवस्था के उदात्तीकरण से प्राण अवस्था, प्राण के उदात्तीकरण से जीव और जीव अवस्था के उदात्तीकरण से ज्ञान अवस्था हुई। जीव–जानवर, पक्षी, पेड़–पौधे, हवा पानी और पदार्थ अवस्था की अनेक इकाईयों के होने से मानव का इस धरती पर होना संभव है। मानव अपने जीने के लगभग सभी आयामों में पदार्थ अवस्था का उपयोग करता हैं। जैसे आवास, दूरगमन, दूरदर्शन इत्यादि के लिए यंत्र।

इस प्रकार पदार्थ अवस्था स्वयं एक व्यवस्था है और अपने से बड़ी अवस्थाओं के लिए उपयोगी है। प्राणावस्था और जीवावस्था भी स्वयं एक व्यवस्था हैं और पदार्थ अवस्था के लिए पूरक हैं।

अभ्यास व अध्ययन

1. भूगर्भ में जो पदार्थ पाए जाते है, उन्हें धरती की सतर पर लाकर क्या परिणाम हो रहे हैं?
2. जीव अवस्था पदार्थ और प्राण अवस्था का किस तरह उपयोग करती है?
3. जीव अवस्था, पदार्थ और प्राण अवस्था के साथ किस तरह पूरकता निभाती है?

गतिविधि – कोयला, लोहा, खनिज तेल के उपयोग से हम सभी किस तरह कर रहे है? इस पर बच्चों के साथ चर्चा करें। इनके विकल्प रूप में हम क्या–क्या कर सकते है, इस पर भी विस्तार से चर्चा हों।

पाठ–6

प्राण अवस्था

इस धरती पर चार अवस्था दिखाई देती है। ये हैं पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था एवं ज्ञान अवस्था। पदार्थ अवस्था पहली अवस्था हैं एवं प्राण अवस्था दूसरी अवस्था। प्राण अवस्था विरचना होने के पश्चात पुनः पदार्थ अवस्था में परिवर्तित हो जाती है। प्राण अवस्था की वृद्धि को देखे तो यह स्पष्ट होता है कि भूमि से विभिन्न प्रकार के रसायन एवं वायु एकत्रित होकर प्राणावस्था की पुष्टि के कारण बनते हैं। ये सभी द्रव्य प्राण अवस्था की रचना में समा जाते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पदार्थ अवस्था से पुनः प्राण अवस्था बनती है।

पदार्थ अवस्था का प्राण अवस्था में बदलना एवं पुनः पदार्थ में परिवर्तित होना आवर्तनशलता कहलाता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पदार्थ अवस्था प्राण अवस्था के पूरक है। धरती की सतह पर पानी एवं विभिन्न प्रकार के रसायन पाए जाते हैं। इन विभिन्न प्रकार के रसायनों का बनना, पानी का बनना इसी पूरकता को ही व्यक्त करता है। इन सब प्रकार के रासयनों का होना, निश्चित अनुपात में होना, इनके परस्परता में ताप एवं दाब का होना, प्राणावस्था के प्रकटन एवं अग्रिम कार्यकलाप का कारण है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि पदार्थावस्था प्राणावस्था के लिए पूरक है। इस प्रकार प्राणावस्था में पूरकता को तीन प्रकार से पहचान सकते हैं। प्रथम, पदार्थावस्था का प्राणावस्था के लिए पूरक होना। द्वितीय, प्राणावस्था की अन्य इकाईयों के लिए पूरक होना एवं तीसरा, प्राणावस्था का जीवावस्था तथा ज्ञानावस्था के लिए पूरक होना।

प्राणावस्था की प्रत्येक ईकाई का प्राणावस्था की अन्य इकाई के लिए पूरक होना भी दिखाई पड़ता है। किसी एक प्रकार के पौधे के साथ किसी अन्य प्रकार के पौधे के होने पर दोनों एक दूसरे को पोषण देते हैं। एक पौधे की पत्ती एवं जड़ दूसरे पौधे के लिए उर्वरक का कार्य करती है। यह परस्पर होता है। इसी प्रकार एक पौधे की उपस्थिति से दूसरे प्रकार के पौधे में कीटो का आक्रमण कम हो जाता है। इस पूरे प्रकरण को कृषि कार्य में पहचाना एवं निर्वाह किया जाता है। गेहूँ के साथ सरसों को मिलाकर बोना, दोनों में कीट नियंत्रण प्रक्रिया को बढ़ा देना है। इसी

प्रकार मिश्रित कृषि एवं फसल चक्र को मानव परम्परा में उपयोग किया जाता है।

प्राणावस्था, जीवावस्था व ज्ञानावस्था के लिए पूरक है। शाकाहारी जीव प्राणावस्था का भोजन करते हैं। उनके लिए और कोई विकल्प नहीं है। प्राणावस्था का भोजन करके ही वे स्वस्थ रहते है, वृद्धि को प्राप्त करते हैं, जीवित रहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्राणावस्था शाकाहारी जीवों कें लिए पूरक है। शाकाहारी जीवों को मांसाहारी जीव भक्षण करते हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से प्राणावस्था ही उनके आहार के लिए साधन है। इसके अलावा वृक्षो–झाड़ी के आश्रय में रहना भी, प्राणावस्था की पूरकता है। प्राणावस्था की इकाईयाँ से भूमि का कटाव रुकता है, भूमि में जल संग्रहण क्षमता बढ़ती है। यह भी जीवावस्था के लिए पूरक होता है। यही सब ज्ञानावस्था के लिए भी पूरक होता है।

पदार्थावस्था की इकाईयाँ एक विशेष क्रिया के फल स्वरूप प्राण अवस्था में परिवर्तित होते हैं। यह क्रिया प्राणावस्था में ही होती है। प्राणावस्था के अनुकूल बनाने की क्रिया हाती है। इस क्रिया के फलस्वरूप पदार्थ अवस्था, प्राणअवस्था में परिवर्तित हो जाती है।

प्राणावस्था की मूल इकाई प्राणकोशिका है। प्राणावस्था की एक इकाई अनेकों प्राणकोशिकाओं से बनी रचना होती है। जड़, तने, पत्ते, शाखा सभी स्थानों में प्राण कोशिकाएँ होती हैं। ये सब कोशिकाएँ मिलकर उस पौधे की व्यवस्था में भागीदार होती हैं। भिन्न स्थान में पाई जाने वाली कोशिकाओं का भिन्न कार्य होता है। सभी कोशिकाएँ मूलतः एक ही प्रजाति की होती हैं, परन्तु स्थान विशेष में रहकर उनका विशेष कार्य होता है। यही प्राणावस्था की व्यवस्था का आधार है। जड़ में रहने वाली कोशिकाएँ अर्थात जड़ के तने एवं शाखा की कोशिकाएँ उन द्रव्यों को क्रम से उपर पहुँचाती हैं। इस प्रकार ये द्रव्य पत्तियों तक पहुँचते हैं। वहाँ ये द्रव्य विभिन्न रसायन में परिवर्तित होते हैं। ये रसायन पेड़ की पुष्टि के लिए आवश्यक होते हैं। ये रसायन पूरे पेड़ में पुनः क्रम से पहुँचते है। सभी कोशिकाएँ उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचाने में भागीदार होती हैं। पूरे पेड़ में ये रसायन पहुँचते हैं। पूरे पेड़ में वृद्धि होती है। यह वृद्धि जड़ में, तने में, शाखा में, पत्ती में होती है। इससे यह स्पष्ट होता है, जड़ एवं पत्तियों द्वारा ग्रहण किए गए द्रव्य, पेड़ में विभिन्न रसायन में बदलते हैं। ये रचनातत्व एवं पुष्टितत्व कहलाते हैं। ये रचना तत्व एवं पुष्टितत्व क्रम से पूरे पेड़ में पहुँचते हैं और इससे प्रत्येक अंग पुष्ट होता है एवं वृद्धि होती है।

वनस्पतियों में नियंत्रण पाया जाता है। इसे इस प्रकार से समझते हैं कि पेड़ पौधे का आकार निश्चित होता है। आम के वृक्ष के पत्ते को देखें तो सभी पत्ते एक निश्चित आकार में होते हैं। इसी प्रकार पत्ते का स्वाद भी एक ही होता है। स्वाद एक होने का अर्थ है पत्ते में पाए जाने वाले रासायनिक द्रव्य भी एक जैसे हैं। पत्ते का गंध भी एक ही होता है। रंग भी एक ही होता है। इसे हम नियंत्रण कहते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक प्रजाति के पेड़–पौधे की लम्बाई, आयु भी एक ही होती है। उनके फूलने–फलने का समय भी एक ही होता है। यह भी नियंत्रण कहलाता है।

प्राणावस्था की प्रत्येक इकाई में नियंत्रण पाया जाता है। इसी के साथ प्राणावस्था की सम्पूर्ण इकाईयाँ मिलकर भी एक व्यवस्था तथा नियंत्रित। उदाहरण के लिए किसी वन में कई प्रजाति के पौधे होते हैं। सभी प्रजाति के पौधे वन में बने रहते हैं। सभी प्रजाति में बीज गुणन होता है अर्थात प्रत्येक प्रजाति में अनेक बीज प्रतिवर्ष पैदा होते हैं। प्रायः सभी बीज अंकुरण की क्षमता सम्पन्न होते हैं। अनुकूल परिस्थिति में परन्तु क्या सभी बीज पौधे एवं बड़े वृक्ष बनते हैं? इसका उत्तर है नहीं। बरगद, पीपल जैसे बड़े वृक्ष जो प्रतिवर्ष लाखों–करोड़ों बीज पैदा करते हैं, ये काफी लम्बी आयु के वृक्ष होते हैं। इन लाखों बीजों से प्रतिवर्ष एक ही पौधा बने तो अगले कुछ वर्षो में वन में केवल वही प्रजाति दिखना चाहिए – परन्तु यह होता नहीं है। सभी प्रजाति बने रहते हैं। इस प्रकार हम समझते है कि लम्बी आयु के वृक्षों में बीज से पौधे बनने की परिस्थिति अधिक कठिन होती है, उनके बड़े होने की स्थिति भी कठिन होती है। जबकि एक वर्षीय घास के बीजों के पौधे बनने, बड़े होने की स्थिति आसान होती है। यह भी नियंत्रण कहलाता है। यह नियंत्रण बीजानुषंगी व्यवस्था है। इससे पौधे के रूप, गुण यथावत पीढ़ी से पीढ़ी बने रहते हैं। साथ ही वृक्षों का अनुपात भी बना रहता है।

इन सबके साथ एक और नियंत्रण दिखता है। प्राणावस्था धरती पर एवं जल में उगते हैं। ये वायु में एवं जल में बढ़ते हैं। मात्रा की दृष्टि से देखें तो प्राणावस्था की कुल मात्रा, पदार्थावस्था की कुल मात्रा से अत्यंत कम होती है। पदार्थावस्था की कुल मात्रा अर्थात स्थल, जल एवं वायु की कुल मात्रा। प्राणावस्था का आहार पदार्थावस्था में उपलब्ध है। प्राणावस्था का आवास भी पदार्थावस्था में है। इस प्रकार प्राणावस्था का आहार व आवास प्राणावस्था से लाखों गुणा है और ये हमेशा ऐसा ही रहता है। कभी भी प्राणावस्था पदार्थावस्था के अधिक नहीं हो सकती, न हीं

समान हो सकती है। हमेशा पदार्थावस्था प्राणावस्था से कई गुणा अधिक ही रहेगी। अतः प्राणावस्था के लिए भोजन की कमी हो ही नहीं सकती। यह भी नियंत्रण का ही स्वरूप है।

बीजानुषंगीय व्यवस्था प्रत्येक प्रजाति में पायी जाती है। इसी कारण उस पौधे की प्रजाति के रूप एवं गुण–परम्परा से पौधे एक जैसे बने रहते हैं। प्राणावस्था की इसाई का दूसरी प्राणावस्था की इकाईयों के साथ पूरकता बनी रहती है एवं आगे की व्यवस्था यथा जीव एवं ज्ञान अवस्था के साथ पूरकता बनी रहती है। किसी मानव प्रयास से यही बीज की बीजानुषंगीयता में परिवर्तन किया जाए तो ये तीनों प्रकार की पूरकता में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। उस प्रजाति के विलुप्त होने की संभावना, रोगग्रस्त होने की संभावना एवं जीव तथा ज्ञान अवस्था के शरीर के लिए रोग कारक होने की संभावना होती है।

प्राणावस्था में बीजानुषंगी व्यवस्था एवं नियंत्रण उसकी मौलिकता है। यही उसके परम्परा में बने रहने का आधार है। यही जीव एवं ज्ञान अवस्था के बने रहने का आधार है।

अभ्यास व अध्ययन

1. प्राणावस्था की एक इकाई, प्राणावस्था की दूसरी इकाईयों के लिए किस तरह से पूरक है?
2. प्राणावस्था की एक इकाई में वृद्धि का कार्य किस तरह से संपन्न होता है?
3. प्राणावस्था की इकाई में किन–किन तरीकों से नियंत्रण पाया जाता है?
4. बीजानुषंगी व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।

पाठ–7

जीव अवस्था

पशु–पक्षियों के समूह को जीवावस्था कहते हैं। जीवावस्था जीवन (चैतन्य इकाई) और शरीर (जड़ इकाई) का संयुक्त रूप है। जीव–शरीर में पदार्थवस्था और प्राणावस्था के गुण समाये हैं। जीवन होने से जीवावस्था में आशा की क्रिया भी निरंतर बनी रहती है जिसके कारण वह पदार्थावस्था और प्राणावस्था से भिन्न है। आशावादी होने से पशु–पक्षी; पेड़–पौधे, मिट्टी, वायु, जल की तुलना में; ज्यादा विकसित हैं। यह आशा जीने की आशा के रूप में पहचानी जाती है।

जीवावस्था में जीव–शरीर (जड़ पक्ष) को देखते हैं तो हम उसमें वृद्धि, श्वसन, पाचन और प्रजनन क्रिया पाते हैं। अर्थात् जीव शरीर प्राणावस्था की इकाई जैसा ही कार्य करती है। जैसे जीव–शरीर में वृद्धि होती है और इसलिए उसकी आयु की एक निश्चित सीमा है। समय के साथ–साथ प्राणकोशिकाऐं बनती और मरती रहती हैं। आयु बढ़ने से प्राणकोशिकाओं को निष्प्राणित होना, सप्राणित होने की तुलना में और तेज़ी से होता है। इससे शरीर की मांस–पेशियाँ, हड्डियाँ कमज़ोर हो जाती हैं और शरीर में वृद्धि बंद होती है। साथ ही, जीवावस्था के शरीर में श्वसन क्रिया होती है। जीव–शरीर, मानव–शरीर की तरह, वायु अन्दर–बाहर करता है और इस प्रक्रिया से अपने शरीर का रक्त–शोधन करता रहता है। शुद्ध रक्त से शरीर पुष्ट बना रहता है। श्वसन–प्रश्वसन, रक्त–शुद्धि शरीर में होने वाली रसायनिक क्रियाऐं हैं और इसके तहत प्राणकोशिका में पोषक–तत्व अवशोषित होते हैं और अनावश्यक तत्व बाहर निकलते हैं। इस क्रिया से प्राणकोशिका सप्राणित रहती है। फेफड़ों और त्वचा में प्राणकोशिका से अनावश्यक तत्व शरीर से बाहर निकलते हैं। फेफड़ों और त्वचा के अतिरिक्त शरीर की सफाई पाचन और निष्कासन क्रिया से होती है। जीवावस्था की इकाई भोजन करती है, उसका आहार शरीर में पचता है, पचने पर पाचक रस यानि पुष्टि तत्व रक्त में मिलते हैं और अपाचकीय वस्तु शरीर से मल–मूत्र के रूप में बाहर निकलती है। यह निश्चित और नियंत्रित क्रियाकलाप, जीवावस्था का स्वयं में व्यवस्था होने का प्रमाण हैं।

जीवावस्था में लिंग–भेद के आधार पर प्रजनन क्रिया संभव है। जीव में, मानव की तरह, प्रजनन क्रिया द्वारा मादा के गर्भ में शरीर निर्मित होता है। जीव–शरीर से एक या अनेक जीव–शरीर का निर्माण होना एक प्रकृति सहज व्यवस्था है अर्थात् शरीर निर्माण होना जीवावस्था में एक निश्चिता है।

जीवावस्था के शरीर में रक्त और मेधस होता है जबकि प्राणावस्था में नहीं होता है। इसलिए मेधस–युक्त शरीर को चलाने के लिए जीवावस्था में जीवन है। यह जीवावस्था और प्राणावस्था में भिन्नता है। शरीर और जीवन का साथ–साथ होना जीवावस्था और ज्ञानावस्था दोनों में ही होता है।

शरीर को स्वस्थ बनाऐ रखने के लिए पशु–पक्षी आहार करते हैं। जीव के आहार को पचाने के लिए उनके शरीर की अन्दरूनी रचना अनुकूल है। इस अनुकूलता से आहार आसानी से पचता है और पशु–पक्षियों को भोजन एकत्रित करने की, शिकार करने की, आवास बनाने की ऊर्जा मिलती है। इसलिए जीवावस्था का प्रधान कार्यक्रम, आहार करके शरीर को स्वस्थ बनाऐ रखना है। इनका पदार्थावस्था (वायु–जल) और प्राणावस्था (वनस्पतियाँ) के साथ मुख्यतः आहार एवं आवास का ही संबंध है। इस तरह पशु–पक्षी अपने आहार के लिए घूमते रहते हैं। आहार के अतिरिक्त जीवावस्था की इकाई अपनी प्रजाति के साथ प्रजनन क्रिया में प्रवृत्त होती है। दूसरे जानवरों के भय से छिपने के लिए स्थान ढूंढती है और निद्रा के लिए स्थान चिन्हित करने के लिये घूमते हैं। यह सभी कार्यक्रम जीवावस्था अपने जीवन में जीने की आशा के अर्थ में करते हैं। जीवावस्था में जीने का तात्पर्य शरीर को स्वस्थ बनाऐ रखना और उसकी परंपरा बनाए रखना है।

मानव भी आहार का सेवन करते हैं और अपने शरीर को पुष्ट करते हैं। आहार के साथ–साथ मानव आवास, अलंकार, दूरगमन, दूरश्रवण, दूरदर्शन जैसी सुविधाओं का भी उपयोग–सदुपयोग करते हैं। यह सुविधाऐं मानव के शरीर की आवश्यकता हैं, हमारे परिवार और समाज में जीने के लिए अनिवार्य हैं, परंतु पर्याप्त नहीं हैं। मानव सुविधा के साथ–साथ संबंधों में जीते हैं और तृप्त होते हैं। मानव का जीना मूल्य–प्रधान है अर्थात् मूल्यों के आदान–प्रदान के लिए मुख्यतः जीते हैं। समझदार मानव मूल्यों को समझते हैं और यह समझकर संबंधों में जीते हैं और सुविधाओं को उपयोग करते हैं।

जीवावस्था की इकाई अपने शरीर अनुसार निर्णय लेती है यानि कि अपने और अपने संतान के शरीर के पोषण और संरक्षण के अर्थ में ही संचालित है। इसलिए जीवावस्था के जीने के लिए भौतिक वस्तुएँ (प्रधानतः आहार) पर्याप्त है। जीवावस्था केवल जीने के लिए शरीर के साथ जीता है। अपितु, ज्ञानावस्था (मानव) सुखपूर्वक, संबंधपूर्वक जीने के लिए शरीर को अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक साधन के रूप में उपयोग करता है।

उदाहरण के लिए हम गाय को निश्चित समय पर चारा देते हैं। गाय वह चारा खाती है और पुष्ट होती है। गाय यह जानने का प्रयास नहीं करती कि यह चारा कहाँ से आया है, कैसे ऊगा है इत्यादि। परंतु मानव अपने आहार के बारे में सब कुछ जानता है या जानना चाहता है। इसलिए हम मानव सब चीज़ जानकर अथवा समझ कर करते हैं और पशु–पक्षी मानकर करते हैं। गाय हमें मालिक या सरंक्षक मानकर हमारा दिया हुआ आहार खाती है। गाय हमारे (जीवन के) संकेत से अपने शरीर को नियन्त्रित करती है। मानव में जानना एवं मानना और पशु–पक्षियों में मानना – यह दोनों क्रियाऐं जीवन में होती हैं न कि शरीर में। शरीर केवल एक भौतिक–रासायनिक वस्तु है जिसके माध्यम से मानव कार्य और व्यवहार करते हैं और जानवर अन्य क्रियाकलाप करते हैं।

जीवावस्था को हम उनकी वंशानुषंगीयता से पहचानते हैं। अर्थात जीवावस्था की इकाई अपने वंश–अनुसार कार्य करती है और अपने वंश की परंपरा बनाए रखती है। जैसे गाय का बच्चा गाय की तरह वही वनस्पतियाँ खाता है, वैसे ही चलता है, सोता है, मुँह से पानी पीता है, विश्राम करता है इत्यादि। ज्ञानावस्था की इकाई, संस्कारानुषंगी है और अपनी समझ (ज्ञान) अनुसार कार्य या व्यवहार करती है। इसलिए एक ही परिवार में पले हुए बच्चों में भिन्न व्यवहार देखते हैं। यह भिन्नता उनके अलग–अलग समझ के स्तर का परिणाम है। इस तरह हम जीवावस्था में वंशानुषंगीयता के आधार पर व्यवस्था पहचानते हैं और ज्ञानावस्था में संस्कारानुषंगीयता के आधार पर व्यवस्था समझते हैं।

वंशानुषंगीयता, जीवावस्था में संतुलन की पहचान है। जीवावस्था में दो स्वभाव के पशु–पक्षी होते हैं – क्रूर और अक्रूर। क्रूर पशु–पक्षी की संतान भी क्रूर ही होती है। अक्रूर पशु–पक्षी की संतान अक्रूर ही होती है। इसलिए क्रूर और अक्रूर स्वभाव की जीवावस्था की इकाइयों का आचरण और उनके शरीर की परंपरा निश्चित है। माँसाहारी और शाकाहारी का एक व्यवस्था में हमेशा बना रहना ही संतुलन है। साथ ही, इनका प्रकृति में एक निश्चित अनुपात में बना रहना,

जीवावस्था में संतुलन का प्रमाण है। यह निश्चित अनुपात माँसाहारी का शाकाहारी की तुलना में कम मात्रा में होना, कम संतानें पैदा करना और कम प्रजातियों के हाने से है।

ज्ञानावस्था संस्कारानुषंगी होने से न्याय, धर्म और सत्य के नियम से व्यवस्था में है। इसलिए मानव को जीवावस्था से ज़्यादा विकसित इकाई के रूप में पहचानते हैं। ज्ञानावस्था चारों अवस्थाओं में सबसे विकसित इकाई है। अतः ज्ञानावस्था–जीवावस्था, पदार्थ और प्राण अवस्था का उपयोग करती है और जीवावस्था ज्ञानावस्था के लिए पूरक है। जैसे जीवावस्था से मानव को दूध, ऊन, गोबर, औषधि जैसी चीजें प्राप्त होती हैं और मानव उनका कृषि में, यातायात में, यंत्रों में उपयोग करते हैं। जीव की भागीदारी से मानव कृषि की ज़मीन को जोतते हैं, ज़मीन की पानी से सिंचाई करते हैं, फसल को एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं। जीव–जानवर से प्राप्त दूध से हम घी बनाते हैं, गो–मूत्र से औषधि बनाते हैं, ऊन से कपड़े बुनते है इत्यादि। मानव पशु के उपयोग से कृषि करके अपना भोजन तैयार करता हे, पशु को आहार देकर उसका संरक्षण करता है और उसके गोबर का मिट्टी में उपयोग करके मिट्टी की उर्वरकता बनाऐ रखता है। अर्थात पशु का मानव के लिए उपयोगी होना एक वास्तविकता है। इसी तरह, गाय को हम एक टोकरी घास देते हैं, वह घास खाकर जो गोबर देती है उससे एक टोकरी से अधिक घास पैदा होती है। घास का विरचित होकर मिट्टी में मिलना एक आवर्तनशील प्रक्रिया है। गाय घास खाकर इस आवर्तनशील प्रक्रिया को गति प्रदान करती है। गाय के खाने के कारण घास और तेज़ी से विरचित होकर गोबर बनती हैं और यह गोबर मिट्टी में मिलकर संवर्धित होती है। इस तरह पशु–पक्षी और हम एक दूसरे के परस्पर पूरक है और इसलिए हमारा साथ–साथ रहना स्वाभाविक है।

अभ्यास व अध्ययन

1. जीवावस्था, प्राणावस्था से किस तरह से भिन्न है?
2. जीव के शरीर में कौन–कौन सी क्रियाएँ होती है?
3. जीवावस्था में जीवन किस तरह काम करता है?
4. वंशानुषंगियता को स्पष्ट कीजिए।
5. जीवावस्था में संतुलन को किस प्रकार से समझ सकते है?
6. जीवावस्था व ज्ञानावस्था में भेद बताइए।

पाठ –8

ज्ञान–अवस्था

हम मानव, एक बहुमुखी और अभिव्यक्ति संपन्न इकाई है और ज्ञान अवस्था के रूप में, प्रकृति की सबसे उन्नत और श्रेष्ठ रचना है। समृद्ध मेधस तंत्र के साथ–साथ एक सीधा शरीर, जिस कारण हाथ का मुक्त उपयोग करने में हम सभी मानव न सिर्फ सक्षम हैं, अपितु, सोचने, विचारने, भाषा आदि क्रियाओं में सहज योग्यता भी हम सभी को प्राप्त है। इसके साथ जागृति और समाध ाान की क्षमता–संपन्नता भी हम सभी मानव को प्राप्त है।

जानकारी, समझ और अनुभव को अभिव्यक्त करते हुए, भावपूर्ण कर्त्तव्य और दायित्व के साथ परस्परता में व्यवहार करते हुए, समृद्ध परिवार और अभय समाज के संरचना भी हम सभी मानव के लिए सहज है। यह क्षमताएँ हमें, प्रकृति की अन्य इकाईयों से भिन्न और श्रेष्ठ बनाती हैं और प्रकृति में पूर्णता की ओर सहज गतिक्रम को उजागर करती है।

मानव, जीवन क्रियाओं और शरीर क्रियाओं का सह–अस्तित्व है और इन दोनों प्रकार की क्रियाओं के सम्मिलित स्वरूप में मानव के 'होने' और 'रहने' के दो आयाम का प्रकाशन है। हर मानव में यह दो पहलु वर्तमान हैं :

- मानव का 'होना'
- मानव का 'रहना'

हर मानव स्वस्थ शरीर का, समाधानित विचारों का और स्वयं की सुख, शांति, संतोष और आनंद की स्थिति और इसमें निरंतरता की इच्छा के साथ है और इससे हम सभी अनुभव करना चाहते हैं। यह हम सभी मानव का सहज 'होना' है, अर्थात (निरंतर सुख के अनुभव के साथ होना)।

मानवीय आचरण पूर्वक जीते हुए, आवश्यकता अनुसार कर्म और संबंधपूर्वक व्यवहार करते हुए,

परिवार व्यवस्था से लेकर विश्व परिवार व्यवस्था को भागीदारी पूर्वक सिद्ध करना हमारा सहज 'रहना' है अर्थात (मानवीय आचरण, कर्म और भागीदारी के प्रयोजनों के साथ रहना)।

इस प्रकार 'होना' और 'रहना' हम सभी मानव को सहज स्वीकार होता है। यह हम सभी मानव के लिए, लक्ष्य और प्रयोजन है। लक्ष्य अर्थात स्वयं की स्थिति में अनुभव करना और प्रयोजन अर्थात अपने हर कर्म, कार्य और भागीदारी को दिशा दे पाना।

'निरंतर सुख पूर्वक 'होने' और 'प्रयोजन पूर्वक' – आचरण, कार्य, व्यवहार और भागीदारी से मानव, परिवार व्यवस्था, विश्व परिवार व्यवस्था को सिद्ध कर पाना हम सभी मानव के लिए सबसे प्रभावशाली तत्व है, और इस संस्कार को हम 'संस्कार' शब्द से इंगित करते हैं। 'संस्कार' इस प्रकार, स्वयं में निरंतर सुख के रूप में और मानवीय आचरण में संकल्प के रूप में स्थित है।

मानव संस्कार–अनुषंगी हैं अर्थात संस्कार पूर्वक या संस्कार की अपेक्षा में क्रियाशील है और यह हमें जीवों से पृथक करता है। जीव–अवस्था वंश–अनुषंगी होती है और अपने शरीर के आध ाार पर ही उनका 'होना' और 'रहना' होता है जबकि जागृत मानव संस्कार अनुषंगी होने के कारणवश सुख के निरंतर अनुभव और आचरण में निश्चितता के लिए कार्यरत रहता है। भ्रमित मानव सुख की निरंतरता और निश्चित आचरण को मूल्यांकित न कर पाने के कारण वश, अपने कर्म, व्यवहार को सुनिश्चित नहीं कर पाता है और कई मान्यताओं पूर्वक सुख का अनुभव करने के लिए कार्यरत रहता है। इसलिए भ्रमित मानव संस्कार की अपेक्षा में होता और रहता है जबकि जागृत या समधानित मानव संस्कार पूर्वक होता और रहता है। समझदारी की पात्रता को विकसित करना, हम सभी के लिए एक आवश्यकता है और सभी मानव स्वयं में इस विकास के अपेक्षा में रहते है।

संस्कार के अर्थ को हम तीन बिंदु के रूप में स्वीकार सकते है। इन तीन बिंदु के सम्मलित स्वरूप को ही (समझदारी) कहते हैं और इसको स्वयं के लिए निश्चित करने को (समाधान)।

- ज्ञान
- विवेक
- विज्ञान

समझदारी या संस्कार (ज्ञान विवेक और विज्ञान) के स्वरूप में होता है और एक समझदार या समाधानित मानव इन तीनों तथ्यों का स्वयं में निश्चित कर लेता है।

ज्ञान का अर्थ है – संपूर्ण वास्तविकता, जैसी है, उसको वैसे ही अनुभव कर लेना, स्वीकार लेना और वास्तविकता के अनुसार जीने के लिए प्रमाणित होने का संकल्प होना। ज्ञान, समझदारी का मूल आधार है और तीन तथ्य के रूप में इसका पूरा फैलाव है। यह हैं :

- जीवन ज्ञान अर्थात मानव का शरीर और जीवन के सह–अस्तित्व के स्वरूप में होने को अनुभव, स्वीकृति और प्रमाणित करने का संकल्प होना
- अस्तित्व दर्शन ज्ञान अर्थात सह–अस्तित्व, विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जाग्रति पूर्वक व्यापक, जड़ और चैतन्य इकाई की व्यवस्था और इसके आधार पर पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्था का अपने रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के साथ होने को अनुभव करना, स्वीकारना और पूरकता के साथ जीने में संकल्पित होना।
- मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान अर्थात मानवीय आचरण के साथ मानव के स्वरूप में स्वयं में व्यवस्था को अनुभव करना और इससे स्वीकारना। मानवीय आचरण पूर्वक जीने में संकल्पित होना मानवीय आचरण को बनाए रखते हुए प्रकृति के साथ पूरक कार्य, मानव के साथ पूरक व्यवहार और सार्वभौम व्यवस्था में पूरक भागीदारी की ओर गतिशील होना।

ज्ञान के साथ–साथ, विवेक और विज्ञान भी समझदारी में समाहित है। विवेक को हम निम्नलिखित बिंदु में समझ सकते है –

- मानव लक्ष्य – समाधान, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्व के रूप में समझते और स्वीकारते हैं।
- जीवन रूपी व्यवस्था की शाश्तव को समझना और स्वीकारना
- मानवीय आचरण पूर्वक व्यवहार के नियम को समझना और स्वीकारना और यह नियम को हम तीन बिंदु में समझते ओर स्वीकारते है।
    - ❖ बौद्धिक नियम

- ❖ सामाजिक नियम
- ❖ प्राकृतिक नियम

बौद्धिक नियम के तहत हम कर्तव्य पूर्ण समृद्धि, स्नेह, विद्या, सरलता और अभय को समझते और स्वीकारते हैं और संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान और भय से विमुख होते हैं।

सामाजिक नियम के तहत हम स्वधन, स्वनारी, स्वपुरुष और दया की विधि से जीने की और अग्रसर होते है और परधन, परनारी/पर–पुरुष और पर–पीड़ा से मुक्त होते हैं।

सामाजिक नियम के तहत हम स्वधन, स्वनारी, स्वपुरुष और दया की विधि से जीने की ओर अग्रसर होते है और परधन, परनारी/पर–पुरुष और पर–पीड़ा से मुक्त होते हैं।

प्राकृतिक नियम के तहत हम प्राकृतिक संपत्ति का उनके उत्पादन के अनुपात में व्यय, प्राकृतिक संपत्ति के उत्पादन में पूरक होने और प्राकृतिक वैभव की आवर्तनशीलता को बनाये रखेन में तत्पर होते हैं और प्राकृतिक सम्पदा के अव्यय, उनके उत्पादन में बाधा और आवर्तनशीलता प्रक्रिया में हस्तक्षेप को त्यागते है।

विज्ञान, समझदारी का तीसरा पहलु है और विज्ञान के तहत हमें नित्य प्रयोजनशील होने, कार्य और कार्यक्रम का निश्चयन और अपने हर निर्णय में प्रमाणीकरण को केंद्र बिंदु में रखते हैं। इन्हें हम कालवादी, क्रियावादी और निर्णयवादी ज्ञान भी कहते हैं।

- कालवादी विज्ञान अर्थात हमारे नित्य प्रयोजनशील होने का तथ्य हमें स्वीकार होता है और सार्वभोम व्यवस्था के स्वरूप में हम निरंतर प्रयोजनशील हो जाते हैं।
- क्रियावादी विज्ञान अर्थात उत्पादन कार्य के स्वरूप में उपयोगिता और कला मूल्य को प्रकृति में श्रम पूर्वक स्थापित करने की स्वीकृति और इसमें हम नि ठान्वित होते हैं।
- निर्णयवादी विज्ञान अर्थात अनुभव, व्यवहार और प्रयोग से सिद्ध तथ्य ही हमारे हर निर्णय का आधार होते हैं और इसके प्रमाणीकरण में हम तत्पर रहते हैं।

ज्ञान, विवेक और विज्ञान के समिल्लित और सुन्योजित स्वरूप को हम समझदारी कहते हैं और हम सभी मानव इससे अपना स्वत्व बनाने के लिए अनुषंगी है। संस्कार की इस अनुषंगियता

वश ही हम परस्परता में श्रेष्ठ मानव का अनुकरण, अनुसरण और क्रमशः अध्ययन और शोध के लिए प्रवृत होते हैं। संस्कारपूर्वक या समझदारी में पारंगत होकर हम मानव के रूप में अपने 'होने' को और अपने 'रहने' के आयाम में पूर्णता को प्राप्त करते हैं। यह ही सर्व मानव का चाहना है।

अभ्यास व अध्ययन

पाठ–9

मानव संचेतना

मानव का स्वरूप शरीर और जीवन का सह अस्तित्व है। मानव शरीर भौतिक रासायनिक व्यवस्था का प्रमाण है और जीवन चैतन्य वस्तु है। मानव के अध्ययन क्रम में हमने पिछले भागों में देखा की मानव की आवश्यकतायें दो प्रकार की है – भौतिक साधन के रूप में और संगीतमय तालमेल के रूप में। जैसे हर मानव को भोजन की, वस्त्र की, घर की आवश्यकता है। यह संगीतमयता के रूप में है। संगीतमयता या विश्वास, सम्मान, स्नेह जैसे भाव है और यह सभी गुणात्मक वास्तविकताएं है। भौतिक साधन मात्रात्मक वास्तविकताएं है और यह हमें निश्चित और सीमित मात्रा में ही आवश्यक है। शरीर और जीवन के अध्ययन क्रम में – आवश्यकता भेद – एक प्रमुख भेद है और हम इसका निरीक्षण, परीक्षण कर सकते हैं

शरीर और जीवन को हम क्रिया–भेद पूर्वक भी अध्ययन करते हैं। पिछले भागों में हमने देखा की शरीर क्रियाएं स्वयं स्फूर्त चालित है और इनके कार्य करने में चैतन्य शक्ति की सीधी भूमिका नहीं है। जैसे खाना पचने की क्रिया में हमारी इच्छा, विचार आदि शक्ति का कोई हस्तक्षेप नहीं है। दिल धड़कने और सांस लेने की क्रिया में भी कोई सजगता की आवश्यकता नहीं है। यह शरीर की क्रियाओं के उदाहरण है। इन क्रियाओं में मानव अगर चाहे तो हस्तक्षेप कर सके हैं जैसे सांस को अपनी इच्छा शक्ति से रोक सकते हैं, खाना पचने की प्रक्रिया को पाचन की गोली खाकर बढ़ा सकते हैं इत्यादि। भौतिक रासायनिक क्रियाओं के रूप में शरीर को समझते हुए मानव शरीर की क्रियाओं को प्रभावित करने की शक्ति रखते हैं। समझने, प्रभावित करने, की क्रिया, शरीर क्रियाओं से भिन्न है। समझने, प्रभावित करने, जैसी क्षमताओं का अध्ययन करने पर जीवन क्रियाएं स्पष्ट होती है। यह 'जानबूझ' कर करने की क्षमता ही जीवन का प्रमाण है और जिसे मानव सामान्य भाषा में 'मैं' से संबोधित करते हैं। 'मैं' का एक और नाम 'जीवन' है। जीवन क्रिया, शरीर क्रिया से भिन्न है, सूक्ष्म है, परंतु इसका भी अध्ययन सभी मानव निरीक्षण, परीक्षण और सर्वेक्षण पूर्वक कर सकते हैं।

जीवन दस (10) क्रियाओकं के रूप में एक अविभाजीय इकाई है। यह दस क्रिया स्थिति क्रिया और गति क्रिया के रूप में एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई है।

1. अनुभव क्रिया (स्थिति क्रिया) और इसके साथ प्रमाणिकता क्रिया (गति क्रिया)

2. बोध क्रिया (स्थिति क्रिया) और इसके साथ. ऋतंभरा क्रिया (गति क्रिया)

3. चिंतन क्रिया (स्थिति क्रिया) और इसके साथ चित्रण किया (गति क्रिया)

4. तुलन क्रिया (स्थिति क्रिया) और इसके साथ विश्लेषण क्रिया (गति क्रिया)

5. अस्वादन क्रिया (स्थिति क्रिया) और इसके साथ चयन क्रिया (गति क्रिया)

स्थिति क्रियाएं स्वयं में मूल्यांकित होती है, अनुभूत होती हे और गति क्रियाएं अन्य इकाइयों के साथ संबंध में और जीने में अभिव्यक्त, संप्रेषित और प्रकाशित होती है। इन दस क्रिया का सम्मिलित स्वरूप को ही 'मैं' कहते है और यह 'जानबूझ' रूपी क्रिया है।

'मैं' की क्रियाओं या जीवन क्रियाओं के अध्ययन क्रम में सबसे पहले अस्वादन और चयन क्रिया को पहचान सकते हैं। सभी मानव चुनने के क्रियाकलाप में संलग्न होते हैं। सभी अपने जीवन में आवश्यक और अनिवार्य वस्तु का चुनाव करते हैं। वस्तु के चुनाव में तृप्ति की अपेक्षा रहती है। यह स्वाद लेने की अपेक्षा है। इससे आस्वादन भी कहते है। स्वाद लेने और चयन करने की क्रिया को 3 (तीन) अलग रूप में समझ सकते हैं।

1. रूचि मूलक

2. मूल्य मूलक

3. लक्ष्य मूलक

रूचि मूलक, आस्वादन और इसकी अपेक्षा में किए गए चयन – शरीर और संवेदनाओं के अर्थ में होता है। अपने वातावरण, परिवेश और इन्द्रियों के अभ्यास वश मानव कई प्रकार के चुनाव करते है। जैसे हमें अगर मीठा पंसद है तो खाने में हम मीठे का जरूर चुनाव करते हैं। खाने के बाद अगर सोने का अभ्यास है तो खाना खाने के बाद सोते भी है। इस प्रकार हम अपने शरीर

और संवेदना के अभ्यास वश कई प्रकार के चयन लगातार करते हैं। रूचि मूलक अस्वादन में मानव विषय प्रधान होते हैं अर्थात हम 4 विषय के अस्वादन में उन्मुख होते है और चुनाव इन चारों विषय को ध्यान में रखते हुए होते हैं। यह विषय है – आहार, निद्रा, भय और मैथुन। अजागृत मानव – रूचि मूलक अस्वादन से चालित होता है और उसके चुनाव विषय प्रधान होते हैं।

संबंध की समझ, स्वीकृति, पहचान और इसके निर्वाह के लिए किए गए चयन से – मूल्यों का अस्वादन होता हैं। मूल्य विषय न होकर वस्तु है अर्थात हर इकाई में निहित उसकी मौलिकता है। मानव संबंध के अर्थ में चुनाव करने से होता है। हम – विश्वास, सम्मान, स्नेह, .तज्ञता, गौरव, श्रद्धा, ममता, वात्सल्य और प्रेम जैसे मूल्यों का अस्वादन होता है। यह मूल्य मानव की मौलिकता है। उपयोग, सदुपयोग के अर्थ में मानव भौतिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए भौतिक साधन का चुनाव करते हैं – तो भौतिक वस्तु की उपयोगिता और कला मूल्य का आस्वादन होता हैं। इस प्रकार संबंध में व्यवहार–मूल्य और भौतिक वस्तु के साथ उपयोगिता और कला मूल्य – इनके अस्वादन को मूल्य–मूलक अस्वादन कहते हैं। संबध और आवश्यकताओं को समझते हुए और उने प्रति सतर्क और सजग होकर जब जीतें है तो मानव के चयन इन अर्थों में होते हैं। एक उदाहरण के रूप में परिवार में कई बार ऐसी स्थिति होती है कि कोई बीमार हो जाता है और उसे सेवा की आवश्यकता होती है। मानव ऐसी स्थिति या आवश्यकता को पहचान लेते है और अपने परिवार जन की सेवा–सुरक्षा करते हैं। इसके फल परिणाम के रूप में संबंध मूल्य का अस्वादन करते हैं।

सभी मानव का परम लक्ष्य – स्वयं में समाधान, परविार में समृद्धि, समाज में अभय और अस्तित्व में सह अस्तित्व को प्रमाणित करना है। इस लक्ष्य को प्रमाणित करने के क्रम में चयन या चुनाव करते हैं तो हम मानव और जीवन मूल्य का अस्वादन होता है। न्याय में धीरता, वीरता, भौतिक वस्तु के सदुपयोग के अर्थ में उदारता और उपकार करने के अर्थ में दया, कृपा और करुणा मूल्य मानव–मूल्य है। इन 6 मूल्य के साथ मानव सुख, शांति, संतोष और आनंद मूल्य का भी अस्वादन करने की क्षमता रखते हैं और इन्हें जीवन–मूल्य कहते हैं। मानव–मूल्य और जीवन मूल्य का आस्वादन – मानवीय लक्ष्य के अर्थ में चयन में होता है। समाधान, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्व के लक्ष्य के प्रति सतर्क और सजग होकर जब चयन करते हैं तो इसके फल परिणाम में लक्ष्य मूलक आस्वादन होता है।

चयन क्रिया और आस्वादन क्रिया, चैतन्यता का प्रमाण है और यह अक्षय क्रिया है। जीवन निरंतर चयन करता है और उसका कुछ भाग ही शरीर के द्वारा व्यक्त होता है। निरीक्षण पूर्वक स्वयं में चयन और आस्वादन के प्रति सतर्क हो सकते हैं और जागृति की दिशा में बढ़ सकते हैं। सतर्कता पूर्वक, संबंध मूलक और लक्ष्य मूल्क चयन से मूल्यों का आस्वादन होता है और संबंध और लक्ष्य के प्रति निष्ठा बनती है।

चयन के पीछे कुछ विशलेषण होता है। सभी मानव, सामान्यतः किसी भी स्थिति परिस्थिति के विभिन्न आयाम के बारे में विचारते हैं। विश्लेषण की इस क्रिया को अच्छे से समझने के लिए विश्लेषण के आधार का समझना आवश्यक है। विशलेषण के आधार को हम तुलन क्रिया कहते हैं। तुलन और विशलेषण – निम्नलिखित 6 प्रकार के होते हैं।

प्रिय, हित, लाभ, न्याय, धर्म और सत्य

इन 6 दृष्टियों के आधार पर हर स्थिति परिस्थिति को विश्लेषित करते हैं अर्थात उसके विभिन्न पहलुओं को देखते हैं। प्रिय–अप्रिय दृष्टि के आधार पर विशलेषित करने पर स्पश्ट होता है कि यह अपनी संवदेनाओं की अनुकूलता पर होता है। हमें क्या अच्छा दिखता है, सुनने में हमें जो पसंद है, स्वाद जिसमें आता है, इत्यादि – मात्र इस प्रकार से स्थिति परिस्थिति का विश्लेषण करना, प्रिय–अप्रिय दृष्टि पूर्वक हम करते हैं। शरीर के हित या अहित को प्रमुखता देते हुए जब कोई स्थिति परिस्थिति को विश्लेषित करते हैं तो हित–अहित दृष्टि हैं। किसी भौतिक वस्तु की उपलब्धि पर अत्याधिक ध्यान देते हुए, उस अर्थ में स्थिति परिस्थिति को विश्लेषित करना लाभ–अलाभ की दृष्टि है। प्रिय हित और लाभ दृष्टियां, सीमित और विषय मूलक दृष्टियां है। इन दृष्टियों से स्थिति परिस्थिति को देखकर चयन करने में मानव की तृप्ति संभव नहीं है।

न्याय, धर्म और सत्य दृष्टि पूर्वक एक जागृत मानव हर स्थिति परिस्थिति को देखता है और यह उसके चयन का आधान बनता है। संबंध को पहचानना, उनका निर्वाह करना, मूल्यांकन करना और संबंध में हर पक्ष का तृप्त होना – यह न्याय है।

मानव धर्म समाधान है। सह अस्तित्व रूपी तत्व का अनुभव इसका आधार और सर्वभोम व्यवस्था में भागीदारी, इसका प्रमाण है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीय आचरण ज्ञान के अनुरूप मानव जब हर स्थिति परिस्थिति को समझते और स्वीकारते हैं, धर्म, राज्य और अर्थ

नीति के अनुरूप भागीदारी करते है और मानवीयता के अनुरूप कार्य–व्यवहार करते हैं – तो यह दृष्टि धर्म है। यह जागृति मानव सहज दृष्टि है।

अस्तित्व का अर्थ है – 'होना'। 'होने' को ही सत्य शब्द से इंगित किया जाता है। हर इकाई के 'होने' का स्वरूप शून्य;सत्ताद्ध के साथ इकाई का सह अस्तित्व है और इस प्रकार सह अस्तित्व ही सत्य है। सह अस्तित्व ज्ञान ज्ञानावस्था में, अर्थात मानव परंपरा में उपलब्ध हो, व्याख्यायित हो और मानव इस व्यवस्था के प्रति जिम्मेदार और भागीदार हो – यह सत्य दृष्टि है।

न्याय, धर्म और सत्य दृष्टि के अनुसार स्थिति परिस्थिति का विश्लेषण कर जागृत मानव चयन करते है और इसके फल परिणाम के रूप में जीवन मूल्य, मानव मूल्य, संबंध मूल्य और वस्तु मूल्य का आस्वादन करते हैं।

जीवन क्रिया के स्वरूप में आस्वादन लक्ष्य मूलक और संबंध मूलक होना और तुलन में न्याय, धर्म और सत्य दृष्टि का होना, एक महत्वपूर्ण परिमार्जन है।

अभ्यास व अध्ययन

1. कल्पनाशीलता का सदुपयोग हम कैसे कर सकते है?
2. कर्म स्वतंत्रता का सदुपयोग कैसे हो सकता है?
3. विश्लेषण क्रिया को स्पष्ट कीजिए।
4. इच्छा को स्पष्ट कीजिए।
5. आशा को स्पष्ट कीजिए।
6. बोध किसे कहते है?
7. अनुभव किसे कहते है?

पाठ–10

परिवार व्यवस्था

परमार्थ और पुरूषार्थपूर्वक जीने वाले निश्चित व्यक्ति –समूह को जागृत परिवार कहते हैं। परमार्थ अर्थात् सही समझ और सही कार्य–व्यवहार के लिया किया गया नियोजन। पुरूषार्थ अर्थात् शारीरिक श्रम करके आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना। अतः समाधान व समृद्धि के लक्ष्य सहित मानव का साथ में रहना ही मानवीय व्यवस्था में परिवार कहलाता है।परिवार के सदस्यों का लक्ष्य समान होने से ही साथ जीने का कार्यक्रम संभव होता है।अन्यथा सभी अपनें अलग–अलग लक्ष्य तहत जीते हैं और उस प्रक्रिया में अधिकतर समय परिवार से बाहर बिताते हैं। यह परिवार में अव्यवस्था होने का मुख्य कारण है। अपितु, जागृत परिवार मानव लक्ष्य की रौशनी में अलग–अलग कार्यक्रमों में भागीदार होता है।इन कार्यक्रमों को वह लक्ष्य तक पहुॅचने के लिए माध्यम के रूप में पहुँचानता है।

जैसे शिशु की सेवा और शिक्षा का कार्यक्रम, उसकी जागृति के अर्थ में परिवार पहचानता है। शिशु का शरीर स्वस्थ रहे उसके लिए जागृत माता–पिता शुद्ध और पौष्टिक आहार उपलब्ध कराते हैं। शिशु को दूध उपलब्ध हो, उसके लिए गौपालन करते हैं। शिशु का शरीर पोषित रहे उसके लिए आहार के अतिरिक्त उसके शरीर की तेल से मालिश करते हैं उसे सैर के लिए ले जाते हैं। यह सब सेवा–कार्य से शिशु का षरीर स्वस्थ रहता है। स्वस्थ शरीर होने पर मानव समझने और समझ कर व्यक्त होने योग्य होता है। साथ ही वह माता–पिता के क्रियाकलाप को देख सेवा–कार्य तथा षारीरिक श्रमक का महत्व समझता है और उसमें स्वयं भागीदार होता है।

इसी तरह शिशु को सही शिक्षा उपलब्ध हो उसके लिए माता–पिता प्रारंभिक रूप में परिवार में मानवीयतापूर्ण वातावरण उपलब्ध कराते हैं।जैसे माता–पिता, दादा–दादी और परिवार में अन्य वृद्ध व्यक्तियों के साथ विश्वासपूर्वक जीते हैं। जागृत वृद्ध व्यक्तियों की परिवार को बनाये रखने में मुख्य भागीदारी होती है। परिवार का वातावरण संतुलित बना रहे श्रेष्ठ व्यक्तियों का अना–जाना रहे सभी बच्चे जागृति की ओर प्रेरित हो–इन सबमें इनकी भागीदारी होती है। जागृत

माता–पिता इनके प्रति कृतज्ञ होते हैं। वह कृतज्ञतापूर्वक परिवार और कुटुंब में बुजुर्ग की सेवा करते हैं उनसे पारिवारिक और सामाजिक कार्यों में मार्गदर्शन लेते हैं जन्म दिवस नामकरण विवाह जैसे उत्सव बुजुर्ग के निर्देशन में आयोजित करते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में संतान अपने माता–पिता दादा–दादी के व्यवहार और कार्य को ध्यान से देखती है–किस संबंध को कैसे संबोधित किया जा रहा है व्यवहार में क्या भाव पहचान में आ रहा है इत्यादि। संतान यह सब देख स्वयं भी अपने माता–पिता के जैसे सभी संबंधों का निर्वाह करना शुरू करती है। उदाहरण के लिए जैसे व्यवहार माता–पिता अपने चाचा–चाची के साथ करते हैं वैसे ही संतान अपने चाचा–चाची के साथ करने लगती है।

शिशु अपने माता–पिता को जन्म से स्वीकारे रहता है और इसी लिए उनका अनुकरण और अनुसरण करना स्वभाविक है। अनुकरण अनुसरण की क्रिया द्वारा जागृत परिवार शिशु में विश्वास कृतज्ञता और अन्य मूल्यों की पहचान पुष्ट करता है। इसी विधि से परिवार में माता–पिता दादा–दादी शिशु को बोलना, चलना, खाना –पीना और भाषा सिखाते हैं।अतः परिवार अपने में एक शिक्षा की स्थली है।जागृत परिवार स्वयं मानवीयता में जीता है तो शिशु में मानवीयतापूर्ण आचरण का प्रेरणा स्रोत होता है। अपितु अजागृत परिवार अमानवीयता का स्रोत होता है।

माता–पिता परिवार के साथ–साथ शिक्षा के लिए सही शिक्षण–संस्थान भी चुनते हैं जहाँ सही समझने और सही जीने पर काम होता है।अर्थात् शिशु जो संस्थान में पढ़ता–समझता है, उससे वह परिवार और समाज के पूरक होता है।अतः वह परिवार, परिवार के अन्य कुटुंब, ग्राम और समाज के साथ जुड़कर जीता है।जैसे उत्सवों में लोगों को एकत्रित करना, भोजन की तैयारी में सहयोग करना, उत्सव –स्थली की सफाई करना, उत्सव से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करना, इन सब में वह भागीदार होता है। साथ ही, परिवार के उत्पादन कार्यों में सहयोग करता है–फसल काटना, बीज बोना, पेड–पौधों को पानी देना, धान कूटना इत्यादि। अतः व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वालंबी होना ही मानवीय शिक्षा का फल है।

सार रूप में, मानव लक्ष्य की पूर्ति के लिए परिवार प्रथम सोपान है।लक्ष्य की पूर्ति के लिए परिवार में सभी आयु–वर्ग के व्यक्ति भागीदार होते हैं। प्रौढ और वृद्ध–अवस्था समझाने–सीखाने का क्रियाकलाप करते हैं और बाल और युवा–अवस्था समझने–सीखने का क्रियाकलाप करते हैं। इस तरह जागृत परिवार न्याय, धर्म, सत्य और नियम, नियंत्रण, संतुलनपूर्वक मानव और शेष

प्रंकृति के साथ जीता है।

जागृत परिवार–मानव स्वयं समझ का धारक–वाहक है तथा परिवार और समाज में अन्य मानव के समझदार होने में भागीदार है। सबकी जागृति के लिए कार्यरत होना जागृत परिवार–मानव का दायित्व है। स्वयं मानवीयतापूर्ण आचरण में जीना जागृत परिवार–मानव का कर्तव्य है। अर्थात् स्व–धन, स्व–नारी/स्व–पुरूष और दयापूर्ण कार्य–व्यवहार सहित (अथवा सामाजिक नियम तहतद्ध जीना जागृत परिवार का कर्तव्य है। साथ ही, जागृत परिवार का अपने मन –तन–धन के सदुपयोग एवं सुरक्षा की समझ व प्रमाण परिवार में उपलब्ध कराना जागृत परिवार–मानव का दायित्व है। इसी तरह बाल–अवस्था को परिवार मे रहते हुए नियम और नीतिपूर्वक जीने की प्रेरणा मिलती है। अतः जागृत परिवार, मानव के लिए अपना दायित्व और कर्तव्य सहजता से समझने और जीने की प्रथम स्थली है।

परिवार समाधान–समृद्धि को प्रमाणित करने और उसमें बने रहने के अर्थ में न्यूनतम दस व्यक्ति का समूह होता है।जागृत परिवार के युवा और प्रौढ़ मुख्यतः उत्पादन और सेवा–कार्य करते हैं, वृद्ध–जन परिवार में मानवीयतापूर्ण वातावरण बनाये रखते हैं और ये सब मिलकर परिवार में शिशु की जागृति के लिए कार्यरत रहते हैं।इस प्रक्रिया में परिवार मानव मूलयों का अनुभव करते हैं और उनमें निरंतर जीते हैं।अतः मानव लक्ष्य को प्रमाणित करने और मूल्यों का अनुभव करने के क्रम में परिवार मे किये गए कार्य–व्यवहार के लिए परिवार बडा होना ही सहज है। साथ ही मानव लक्ष्य की पूर्ति के लिए मानव का कम से कम 100–200 परिवारों के साथ जुड़ा होना स्वाभाविक है।इससे कम में समाधान, समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व को प्रमाणित करना संभव नही है। इसी लिए मानव परिवार और समाज में जीते हुए ही जागृत होता है।

अभ्यास व अध्ययन

1. परिवार हमें क्या–क्या सिखाता है, समझाता है?
2. मेरे जीने का फैलाव, कितने आयामों में कैसे दिखता है?
3. हम उत्पादन, विनिमय में कब और कैसे भागीदार होते है?

पाठ –11

मानव–संबंध

संबंधों में जीने और व्यवस्था में भागीदार होने का सबसे छोटा स्वरूप परिवार है। जागृत मानव प्रारम्भिग रूप में परिवार में माता–पिता, भाई–बहन जैसे संबंधों को पहचानता है और उनमें निश्चित भागीदारी का निर्वाह कर मूल्यों का अनुभव करता है। इसी तरह जागृत मानव परिवार की आवश्यकता सुनिश्चित कर उत्पादन–कार्य में अपना श्रम लगाता है, आवश्यकता से अधिक उत्पादन का विनिमय करने के लिए कार्य–योजना बनाता है। साथ ही, वह शिशु की शिक्षा के लिए शिक्षण संस्था के बारे में सोच–विचार करता है। इस प्रकार से जागृत मानव परिवार में संबंध ा पहचानने के साथ–साथ परिवार की व्यवस्था को बनाये रखने में भी भागीदारी होता है। अतः जागृत मानव परिवार में न्याय में जीता और उसका फैलाव अखंड समाज के रूप में देखता है। साथ ही, परिवार में व्यवस्था पूर्वक जीता है और उसका फैलाव समाज में सार्वभौम व्यवस्था के रूप में पहचानता है।

परिवार–मानव का समाज की व्यवस्था में भागीदार होना ही व्यवस्थागत संबंध का निर्वाह है। व्यवस्था के पाँच आयाम होते हैं – शिक्षा–संस्कार, स्वास्थ्य संयम, उत्पादन–कार्य, विनियम–कोष और न्याय–सुरक्षा। प्रत्येक जागृत परिवार इन आयामों में जीता है। यही परिवार–सभा का स्वरूप है। अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था में परिवार–सभा से लेकर विश्व परिवार–सभा तक व्यवस्थागत संबंध होते हैं। इन संबंध में विश्वास और सम्मान सहित परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदार होना सहज है।

व्यवस्थागत संबंध को हम 3 प्रकार से समझ सकते हैं:

1. परिवार और ग्राम के बीच व्यवस्थागत संबंध
2. ग्राम–सभा के प्रतिनिधियों के बीच व्यवस्थागत संबंध
3. ग्राम–सभा या क्षेत्र–सभा के प्रतिनिधियों और अन्य परिवार के सदस्यों के साथ व्यवस्थागत

संबंध

पहला, परिवार और मौहल्ले या ग्राम के बीच व्यवस्था संबंध होता है। मानवीय व्यवस्था में 10 जागृत परिवार के समूह को एक परिवार–समूह सभा कहते हैं। 10 जागृत परिवार–समूह को एक ग्राम कहते हैं। हर जागृत परिवार–समूह सभा एक समझदार प्रतिनिधि का चयन करता है। ऐसे 10 परिवार–समूह में 10 जागृत प्रतिनिधियों का स्वयं–स्फूर्त चयन होता है। ये 10 प्रतिनिधियों का समूह एक ग्राम–सभा कहलाती है। ग्राम–सभा ग्राम के व्यवस्थागत कार्यों की प्रमुख ज़िम्मेदारी स्वीकारती है। सभा ग्राम में शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्पादन, विनियम और न्याय से संबंधित कार्यों पर निर्णय लेती हैं – प्राथमिक शिक्षा शाला कब, कहाँ और कैसे स्थापित की जाये, ग्राम में कौन सी वस्तुओं का उत्पादन अनिवार्य है, किन वस्तुओं का अन्य गाँव के साथ विनिमय करने की आवश्यकता है, स्वास्थ्य से संबंधित किन मुद्दों पर शोध किया जाए, सड़क–तालाब बनाने के लिए कौन सी जगह चिन्हित की जाये, ग्राम–शिल्प और हस्त–शिल्प के लिए कौन सी कलाओं को निखारा जाये इत्यादि। ये निर्णय दयापूर्ण भाव से ग्राम और उसमें समाहित सभी परिवारों की व्यवस्थागत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए लिए जाते हैं।

जागृत परिवार–समूह का प्रतिनिधि ग्राम–सभा की चर्चाओं और निर्णयों में भागीदार होता है। वह परिवार और परिवार–समूह के साथ उन विषयों पर चर्चा करता है और उनसे संबंधित कार्यों को उनके साथ क्रियान्वित करता है। जैसे सभा में विनिमय के लिए निर्णित वस्तुओं का परिवार में आवश्यकता से अधिक उत्पादन करता है, स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त आहार और औषधि तैयार करता है। जागृत परिवार–समूह अपने प्रतिनिधि और ग्राम–सभा की समझ और योग्यता का सही मूल्यांकन कर पाते हैं और उन्हें अपने सुख और समृद्धि के अर्थ में पाते हैं। इस विश्वास से परिवार–समूह ग्राम–सभा के निर्णयों से संतुष्ट होता है, उनका क्रियान्वयन कर व्यवस्थागत संबंध का निर्वाह करता है।

जागृत परिवार–समूह का प्रतिनिधि समाज की व्यवस्था में भागीदार होने में सक्षम हो, इसके लिए परिवार और परिवार–समूह पूरा सहयोग करते हैं। यह जागृत परिवार और परिवार–समूह में संबंध में पूरकता की पहचान का प्रमाण है। पारिवारिक प्रतिनिधि के स्वास्थ्य को बनाये रखना, उसकी योग्यता पर आवश्यकता अनुसार काम करना; यह ज़िम्मेदारी परिवार और परिवार–समूह के श्रेष्ठ सदस्य स्वीकारते हैं। यह व्यवस्थागत संबंध का निर्वाह है।

साथ ही, जागृत परिवार और परिवार–समूह स्वयं खेती, गौपालन या स्वास्थ्य या अन्य उत्पादन में कुछ नए प्रयोग में सफल होते हैं तो उसकी सूचना अपने प्रतिनिधि के द्वारा ग्राम–सभा तक पहुँचाते हैं। सभा उस प्रयोग का निरीक्षण–परीक्षण करती है। उस प्रयोग का उपयोगी सिद्ध होने पर बाकि ग्राम के सदस्यों के साथ उसकी सूचना देती है। इस तरह परिवार, परिवार–समूह और ग्राम–सभा के बीच के व्यवस्था संबंध का निर्वाह होता है।

दूसरा, ग्राम सभा के जागृत प्रतिनिधियों के बीच भी व्यवस्थागत संबंध होते हैं। 10 प्रतिनिधियों के आपस में संबंध होना अस्तित्व–सहज है। ये प्रतिनिधि आपस में व्यवस्था की पाँच समितियों के लिए लोगों का निर्वाचन करते हैं। हर समिति के लिए 3 से 4 समझदार व्यक्तियों को मनोतीत करते हैं। इस तरह 15 से 20 समझदार व्यक्ति का गाँव में समिति के कार्यों के लिए चयन होता है। अतः 10 प्रतिनिधि एवं 15 से 20 मनोनीत व्यक्ति पूरे ग्राम के अथवा 100 परिवार के प्रतिनिधि होते हैं। अर्थात ये 25 से 30 लोग ग्राम के सदस्यों के समाधान, समृद्धि के अर्थ में कार्यरत रहते हैं। सभी न्याय में पारंगत हो और ग्राम अभय में स्थापित हो, यह लक्ष्य–सति प्रतिनिधि एक साथ कार्य करते हैं और व्यवस्थागत संबंध में स्थापित होते हैं।

इन प्रतिनिधियों के बीच सामाजिक मुद्दों पर चर्चा होती हैं; शिक्षा संस्कार समिति में मानवीय शिक्षा के लिए उपयुक्त पाठयक्रम पर षोध होता है, विद्यालय और महाविद्यालय की आवश्यकता का गाँव–समाज के स्तर पर आंकलन होता है, समिति के सदस्य शिक्षण–कार्य करते हैं और अन्य शिक्षकों को तैयार करते हैं; स्वास्थ्य–संयम समिति में स्वास्थ्य केंद्र में सेवा–कार्य करते हैं, सहयोग के लिए अन्य सेवकों का चयन करते हैं, प्रशिक्षण आयोजित करते हैं, औषधियों का उत्पादन करते हैं; न्याय–सुरक्षा समिति हर परिवार में न्याय को मूल्यांकित करती है और कहीं अभाव दिखता है तो उसको ठीक करने के लिए कार्य–योजना बनाती हैं, आपदा–प्रबंधन में प्रशिक्षण देती है। उत्पादन–कार्य समिति प्रत्येक परिवार की आवश्यकता अनुसार उत्पादन की वस्तुओं को ग्राम–स्तर पर सुनिश्चित करती हैं, बीज संरक्षण का कार्य करती हैं। विनिमय–कोष समिति ग्राम और अन्य ग्राम के अंतर्गत विनिमय की वस्तुओं को आश्यकता अनुसार तय करती है, आवश्यकता से अधिक उत्पादित वस्तुओं के कोष के लिए उपयुक्त स्थान उपलब्ध कराती है और विनिमय की विधि तय करके उसको क्रियान्वित करती है।

इन समिति–संबंधित निर्णय लेने के लिए मनोनीत जागृत व्यक्ति एक दूसरे की राय और

ग्राम–सभा के अन्य समझदार प्रतिनिधियों से मार्गदर्शन लेते हैं। इनका एक दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मान का भाव होने से उन्हें एक दूसरे से सीखना–समझना स्वीकारर्य होता है। अजागृति के स्तर पर, विश्वास और सम्मान के अभाव में, व्यवस्था–संबंधित प्रतिनिधियों के बीच प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष जैसे भाव उत्पन्न होते हैं। इससे उनका आपस में कोई सार्थक संवाद नहीं हो पाता है। अपितु, मानवीय व्यवस्था में जागृत प्रतिनिधियों में पूरकता के संबंध की पहचान होने से उनका आपस में संवाद सार्थक और सुखद होता है। अर्थात किसी का शासक होकर दूसरों पर शासन चलाना असंभव होता है। अतः जागृत प्रतिनिधियों का समाज में अखंडता के भाव में जीने से ग्राम स्वराज्य व्यवस्था होना सहज है। परिवार मूलक ग्राम स्वराज्य व्यवस्था की स्थापना ही जागृत प्रतिनिधियों के बीच सह–अस्तित्व के संबंध का निर्वाह है।

अन्य ग्राम सभा के जागृत प्रतिनिधि भी आपस में संबंध पहचानते हैं और एक दूसरे की श्रेष्ठता स्वीाकरते हैं। मानवीय व्यवस्था में 10 ग्राम–सभा से एक ग्राम–समूह सभा बनती है। हर ग्राम–सभा से एक प्रतिनिधि का चयन होता है और इस तरह 10 समझदार लोग ग्राम–समूह सभा के सदस्य होते हैं। ये 10 सदस्य ग्राम–समूह स्तर की पाँचों समिति के लिए 3 से 4 जागृत व्यक्तियों को मनोतीत करते हैं। इस तरह ग्राम–सभा की तरह ग्राम–समूह सभा में भी हर 100 परिवार–समूह के लिए 25 से 30 जागृत मानव का प्रतिनिधित्व रहता है। अतः मानवीय व्यवस्था के हर स्तर पर परिवार, मौहल्ला, ग्राम, क्षेत्र इत्यादि का पर्याप्त प्रतिनिधित्व रहता है।

इस तरह ग्राम–समूह सभा में जागृत प्रतिनिधि एक दूसरे के साथ मानव लक्ष्य (समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व) की पूर्ति के अर्थ में संबंध पहचानते हैं। सर्वतोमुखी समाधान के लिए समाज में गति बने रहना एक अनिवार्यता है। समाज में गति बने रहने से सब तक ज्ञान की सूचना पहुँचना संभव है। समाज–गति के लिए दूरगमन, दूरश्रवन और दूरदर्शन से संबंधित वस्तुओं का निर्माण सुनिश्चित होता है। इसके लिए ग्राम–समूह सभा की समितियाँ आपस में चर्चा करके किन उपकरणों के निर्माण की आवश्यकता है, ग्रामों की महत्वाकाँक्षा की पूर्ति के लिए किन वस्तुओं का उत्पादन और विनिमय करना है, उत्पादन से संबंधित किन कुटीर उद्योग की आवश्यकता है, महाविद्यालय में किन तकनिकी शिक्षण की आवश्यकता है; इन सब पर निर्णय लेती हैं। इस तरह ग्राम–समुह सभा के जागृत प्रतिनिधि आपस में समाज–गति के अर्थ में संबंध ा का निर्वाह करते हैं। यही उनका व्यवस्था–संबंध है।

जागृत प्रतिनिधि व्यवस्था–संबंधित समाज कार्यों की ज़िम्मेदारी सहजता से स्वीकारते हैं अर्थात ईमानदारी सहित उनमें अपनी भागीदारी का निर्वाह करते हैं। व्यवस्थागत संबंध का निर्वाह मानवीयता, अखंडता और सार्वभौमिकता की अपेक्षा में होता है। अतः इस संबंध में वेतन या प्रतिफल की अपेक्षा होना अस्वाभाविक है। जागृत मानव व्यवस्थागत–कार्य को अपना दायित्व और कर्त्तव्य समझते हुए करता है। जागृत प्रतिनिधियों के परिवार में समृद्धि उनके उत्पादन–कार्यों से सुनिश्चित होती है न कि उनके व्यवस्थागत–कार्यों से। व्यवस्थागत–कार्य समाज की व्यवस्था को बनाये रखने के लिए जागृत व्यक्ति अपनी सहज भागीदारी स्वीकारते हुए करता है।

तीसरा, ग्राम–सभा, ग्राम–समूह सभा या क्षेत्र–सभा के प्रतिनिधियों और अन्य परिवार के सदस्यों के साथ भी व्यवस्थागत संबंध होते हैं। ग्राम, ग्राम–समूह और क्षेत्र में व्यवस्थागत समितियाँ वार्षिक उत्सवों में अपने एक वर्ष की सफलताओं और अगले वर्ष कार्य–योजनाओं को सबके सामने प्रस्तुत करती हैं। इस प्रस्तुति में समितियाँ अभी तक के कार्यों के मूल्यांकन के साथ–साथ उनमें सुधार के लिए कार्यक्रम भी प्रस्तुत करती हैं। आगे के कार्यक्रम पर वार्तालाप और महत्वपूर्ण सूचनाओं का आदान–प्रदान भी इस अवसर पर होता है। यह क्रियाकलाप जागृत प्रतिनिधियों का समाज के प्रति सम्मानजनक व्यवहार का प्रमाण है।

गाँव में अन्य जागृत सदस्य समितियों की सफलताओं पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए सुधार के लिए और आगे के कार्यक्रमों के लिए अपने सुझाव अथवा उपाय जागृत प्रतिनिधियों को बतलाते हैं। प्रतिनिधि उन उपाय को आपस में जाँचते हैं और उपयोगी होने पर उनको अपने कार्य–योजना में शामिल करते हैं। उत्सव में प्रस्तुत श्रेष्ठ व्यक्तियों से प्रतिनिधि मार्गदर्शन भी लेते हैं और अन्य कार्यक्रमों के लिए ग्राम–परिवार और क्षेत्र–परिवार के सदस्यों का सहयोग लेते हैं। जैसे विद्यालय बनाने या मरम्मत के लिए अन्य सदस्य अपना श्रम प्रदान करते हैं, गाँव में तालाब बनाने या सुधार के लिए प्रतिनिधि उपयुक्त व्यक्तियों से जानकारी प्राप्त करते हैं, इत्यादि। इन कार्यक्रमों में जागृत प्रतिनिधि और अन्य जागृत सदस्यों की भागीदारी ही व्यवस्थागत संबंध का निर्वाह है। यही व्यवस्था के स्तर पर संबंधों में सम्मान और विश्वास की सहज अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार पारिवारिक (माता–पिता, संतान, भाई–बहन, पति–पत्नि) और सामाजिक संबंधों (मित्र–मित्र, गुरु–शिष्य, साथी–सहयोगी) के साथ–साथ व्यवस्थागत संबंध भी जागृत परंपरा का एक अहम भाग है। इन संबंधों में ही जागृत मानव एक दूसरे के साथ भागीदारी सुनिश्चित कर

पाते हैं और उनमें व्यवहार और मानव मूल्यों का निरंतर अनुभव कर तृप्त होते हैं।

अभ्यास व अध्ययन

1. निपुणता क्या है?
2. कुशलता किसे कहते है?
3. शिक्षा–संस्कार समिति, स्वास्थ्य–संयम समिति, न्याय–सुरक्षा समिति क्या–क्या करती है?
4. सात प्रकार के संबंध कौन से है?
5. संबंध और मूल्य निरंतर और निश्चित है – इसे स्पष्ट कीजिए।
6. दायित्व किसे कहते हैं?
7. कर्त्तव्य किसे कहते हैं?

पाठ –12

मानव–मूल्य

मानव का कोई अस्तित्व है, इसका प्रमाण परिवार में और समाज में, दूसरों के साथ जीने से मिलता है। मानव की मौलिकता ही उसकी पहचान है। मौलिकता अर्थात मानव का धरती पर रहने का प्रयोजन। मानव का प्रयोजन दूसरी इकाइयों (मानव और शेष प्रकृति) के साथ भागीदारी से स्पष्ट होता है। वह मानव–इकाई के साथ व्यवहार करता है और प्राकृतिक इकाई के साथ कार्य करता है। इसलिए मानव की मौलिकता उसके वातावरण (कार्य और व्यवहार क्षेत्र) सहित परिभाषित होती है।

मानव की परस्परता में भागीदारी या अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी ही उसका मूल्य अथवा स्वभाव है। परन्तु, मानव का धर्म क्या है? मानव का धर्म सुखपूर्वक जीना है। हर मानव की मूल चाहत (सूखपूर्वक जीना), उसके धर्म से स्पष्ट होती है।

मानव का धर्म और स्वभाव (मौलिकता) अविभाज्य है। सुखपूर्वक जीने के लिए परस्परता में जीना अनिवार्य है और परस्परता में व्यवस्थापूर्वक जीने के लिए स्वयं में सुखी होना अनिवार्य है। स्वयं में व्यवस्था पहचानना (धर्म) और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करना (स्वभाव) समझदारी सहित ही संभव है।

समझदार मानव दूसरों के साथ प्रयोजन सहित जीता है अर्थात संबंध पहचानता है और उसमें अपनी भागीदारी समझता है। भागीदारी दोनों मानव के सुख और समृद्धि के अर्थ में होती है। इस भागीदारी अनुसार जागृत मानव का संबंध सुनिश्चित होता है और उसके तहत वह निश्चित व्यवहार करता है। भागीदारी का निर्वाह ही मूल्यों का निर्वाह होता है।

जैसे परिवार में सभी जागृत मानव एक दूसरे के साथ अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर मूल्यों का निर्वाह करते हैं। भाई–बहन माता–पिता उत्पादनपूर्वक परिवार के सभी सदस्यों के लिए आहार उपलब्ध कराते हैं। परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन करते हैं और समृद्धि को अनुभव

करते हैं। माँ और परिवार के अन्य सदस्य परिवार के लिए भोजन बनाते हैं, सबके शरीर के पोषण का ध्यान रखते हैं और इस भागीदारी के निर्वाह से स्वयं में ममता निरंतर अनुभव करते हैं।

मूल्यों का निर्वाह ही मानव के सुख का स्त्रोत है। जागृत मानव सुखपूर्वक जीता है। अजगृत मानव निरंतर सुख चाहता है। जागृत जीवन में संबंध, मूल्य और न्याय की स्वीकृति है और वह उनका निर्वाह भी करता है। अजागृत जीवन में ये स्वीकृतियाँ केवल अपेक्षा के रूप में बनी रहती हैं, परन्तु बिना समाधानित (अथवा जागृत) हुए वह इनका निर्वाह नहीं कर पाता है। यही मानव के दु:ख का मुख्य कारण है। समझदारी के अभाव में ही दु:ख है। अतः दु:ख केवल एक अभाव की स्थिति है और उसका स्वयं कोई अस्तित्व नहीं है। ना–समझी में ही मानव दूसरे के साथ बिना लड़ाई–झगड़े, बिना क्लेश के जी नहीं पाता। स्वयं दुखी होता है और दूसरों को भी दुखी करता है।

जागृत मानव ज़िम्मेदारीपूर्वक अजागृत मानव को सह–अस्तित्व में जीने का मार्गदर्शन देता है। जागृत मानव पूरी मानव जाति के प्रति ज़िम्मेदार होता है। इसीलिए समझदार मानव सभी के समझने के अवसर उपलब्ध कराने की सोचता है। अतः उसके सुख का फैलाव स्वयं से पूरे अस्तित्व तक होता है। स्वयं में समाधान, परिवार में समृद्धि, समाज में अभय और अस्तित्व में सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना ही जागृत मानव का पूर्ण लक्ष्य है।

समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व हर मानव का लक्ष्य है। इससे कम में कोई मानव संतुष्ट नहीं होता है। जागृत मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व में प्रमाणित होता है और व्यवहार मूल्य, वस्तु मूल्य, मानव मूल्य और जीवन मूल्य का अनुभव करता है।

स्वयं में समाधान का अनुभव करना ही न्याय में स्थापित होना है। अर्थात समाधानित मानव दूसरों के साथ स्थापित और शिष्ट मूल्यों सहित व्यवहार करता है। समाधानित मानव परिवार में समृद्धि के भाव सहित जीता है अर्थात सबके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करता है और परिवार की भौतिक आवश्यकताओं से अधिक उत्पादन करने की क्षमता रखता है। अतः स्वयं जीवन और शरीर की आवश्यकता सुनिश्चित करने (समाधान) के साथ–साथ वस्तु की मौलिकता को पहचानना से ही परिवार में समृद्धि संभव है। वस्तु मूल्य उसकी उपयोगिता और कला से परिभाषित होता है।

समाज में अभय प्रमाणित करने के लिए जागृत मानव सभी के समाधान के लिए कार्यरत रहता है। सब को समाधान उपलब्ध कराने के लिए स्वयं में धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा का अनुभव होता है। इन मानव मूल्यों सहित वह अजागृत मानव की पात्रता और योग्यता अनुसार उनको जागृति की ओर प्रेरित करने के लिए अपना श्रम लगाता है। सह–अस्तित्व में अनुभव सहित जीना ही जीवन मूल्य युक्त होना है। अर्थात सुख, शांति, संतोष, आनंद की स्थिति ही सह–अस्तित्व की स्थिति है।

पहले भागों में वस्तु, व्यवहार और मानव मूल्य पर चर्चा हो चुकी है। इस अध्याय में जीवन मूल्य पर विस्तार रूप से चर्चा करेंगे।

सुख, शांति, संतोष, आनंद के संयुक्त रूप को जीवन मूल्य कहते हैं। सुख समस्या से मुक्ति, समाधान युक्त वर्तमान की स्थिति है। सुखी मानव, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में परंगात होता है। तीनों ज्ञान की स्पष्टता ही समाधान है। समाधानित मानव स्वयं व्यवस्था में होता है और इसीलिए समग्र व्यवस्था में भागीदार हो पाता है। मानव–मानव संबंधों में न्यायपूर्वक जी पाना ही व्यवस्था में भागीदार होना है। अतः न्यायपूर्वक जीना ही सुखपूर्वक जीना है।

सुख की स्थिति में जागृत जीवन न्याय के आधार पर तुलन क्रिया करती है। इसलिए उसकी आस्वादन और चयन क्रिया (अर्थात आशा क्रिया) न्यायपूर्ण विचारों अनुसार नियंत्रित होती है। वह निरंतर न्याय के आस्वादन में जीता है और अपने कार्य–व्यवहार न्याय के आधार पर चयन करता है। समाधानित मानव के विचारों में कोई शंका या द्वन्द नहीं होते हैं। यह द्वन्द रहित अथवा समस्या मुक्त स्थिति ही सुख है।

इसी तरह समाधान और समृद्धि सहज अनुभव की संज्ञा शांति है। परिवार में समृद्धि प्रमाणित करने की स्थिति ही स्वयं में शांति का अनुभव है। समाधान की स्थिति के बाद ही समृद्धि संभव है। शांति की स्थिति में जागृत मानव अपनी इच्छा एवं विचार में निर्विरोधिता अनुभव करता है। उसकी चाहत के अनुसार उसके विचार होते हैं और उसके विचार अनुसार उसकी आशा होती है। समझदार मानव परिवार में समृद्धि प्रमाणित करने और बनाये रखने के अर्थ में चित्रण करता है – समृद्ध परिवार का क्या स्वरूप होगा। समृद्धि के लिए वह कार्य–योजना पर विचार करता है

– किन वस्तुओं का उत्पादन हो, अधिक उत्पादित वस्तुओं के विनियम और कोष की क्या योजना हो इत्यादि। अपनी इच्छा और विचार अनुसार वह समृद्धि प्रमाणित करने के लिए कुछ योजनाओं का चयन करता है और समृद्ध होता है अथवा समृद्धि के भाव में निरंतर बना रहता है। स्वयं में (इच्छा–विचार–आशा में) संगीतमयता को शांति कहते हैं।

सुख और शांति के साथ–साथ जागृत मानव संतोष भी अनुभव करता है। समाधान, समृद्धि, अभय सहज अनुभव ही संतोष है। समाधानित मानव संबंधों में न्यायपूर्वक जीता है। वह अपने और पराये का कोई भेद नहीं करता और स्वयं में अखंड़ता अनुभव करता है। वह परिवार से लेकर विश्व परिवार तक न्यायपूर्वक जीता है, यह विश्वास उसमें अभय का भाव है। जागृत मानव परिवार से समाज तक की सुख और समृद्धि के लिए प्रयासरत है। स्वयं समाधानित है और सभी समाधानित हो सकते हैं, इस विश्वास से समग्र व्यवस्था में भागीदार होता है और अखंड समाज के लिए कार्य योजना तैयार करता है। परस्पर विश्वास और पूरक क्रिया ही अभय है। अभय में जीना अर्थात संतोषपूर्वक जीना है। जागृत जीवन में बुद्धि में स्वी.त भाव ही जागृत जीवन के इच्छा, विचार और आशा को नियंत्रित करते हैं और यह नियंत्रण ही संतोष है। जैसे अखंड समाज, अभय समाज, सार्वभौम व्यवस्था की जागृत मानव (की बुद्धि) में स्वीकृति हाती है और उसकी इच्छा, विचार और आशा शक्ति इसी से नियंत्रित होती है। बुद्धि वास्तविकता को ही स्वीकारती है, अभाव या निरर्थक वस्तु का बुद्धि में कोई स्थान नहीं है।

सह–अस्तित्व में अनुभव की आनंद संज्ञा है। सह–अस्तित्व की अनुभूति से ही अजागृत मानव जागृत होता है। आनंद अथवा अनुभव संपन्न मानव अपने जीने के हर आयाम में सह–अस्तित्व को पहचानता है और प्रमाणित होता है। अर्थात वह परिवार, समाज और प्रकृति के साथ सह–अस्तित्वपूर्वक जीता है और स्वयं में आनंद को निरंतर अनुभव करता है। आनंद के अनुभव के पश्चात मानव अनुभवमूलक विधि से जीता है। यानि कि उसके अनुभव (अस्तित्व सह–अस्तित्वपूर्वक है) के अनुरूप उसका संकल्प (अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था की स्थापना) होता है। उसके संकल्प के अनुसार उसका चित्रण (अखंड समाज का स्वरूप कैसा होगा) होता है। उसके चित्रण के अनुरूप उसके विचार (इसके लिए क्या कार्य–योजना होगी) होते हैं और उसके विचार के अनुसार उसकी आशा (समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व में जीना) होती है। जागृत मानव की सभी जीवन क्रियाएँ सह–अस्तित्व के अनुभव से नियंत्रित होती हैं और उसका कार्य और

व्यवहार भी अनुभव से नियंत्रित होता है – यही अनुभव–मूलक विधि से जीना है अथवा आनंद में जीना है।

सुख, शांति, संतोष, आनंद मानव के जीवन मूल्य है। इन मूल्यों को अनुभव करना ही जागृत मानव में आचरणपूर्णता की स्थिति है। आचरण पूर्णता की स्थिति मानव में जागृतिपूर्ण स्थिति है। यही दिव्य मानवता है। आचरण में पूर्ण रूप से प्रमाणित होने के क्रम में जागृत मानव मानव, व्यवहार और वस्तु मूल्यों को पूर्ण रूप में परिवार और समाज में अनुभव करता है।

अभ्यास व अध्ययन

1. वस्तु मूल्य कौन–कौन से है?
2. स्थापित और शिष्ट मूल्यों की सूची बनाइए।
3. ममता और उदारता को अन्य उदाहरणों सहित स्पष्ट कीजिए।
4. पति–पत्नी आपस में किस तरह से मूल्यों का आदान–प्रदान करते है?
5. धीरता, वीरता, उदारता को स्पष्ट कीजिए।
6. दया, कृपा, करूणा को स्पष्ट कीजिए।

पाठ – 13

सामाजिक पूरकता : स्वास्थ्य में समाज की पूरकता

शरीर की व्यवस्था को संतुलित बनाये रखने में मानव और परिवार के साथ–साथ समाज की भी महत्वपूर्ण भागीदारी है। शरीर की व्यवस्था के लिए शुद्ध आहार सभी अंग अवयवो का संतुलित कार्य ओर मानसिक संतुलन – यह तीनों अनिवार्य है।

मानसिक संतुलन अर्थात ज्ञान में पांरगत होने से ही मानव अपने शरीर के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी सहजता से स्वीकारते हैं। यह संयम की स्थिति हैं संयम समझदारी का फल–परिणाम है अथवा संयम जागृत मानव में ही संभव है। जागृत होने के लिए मानव को जागृत गुरूजन की संगति व मानवीय शिक्षा उपलब्ध कराना आवश्यक है। यह गॉव–समाज के स्तर की जिम्मेदारी है। मानवीय शिक्षण संस्था अक्षर ज्ञान और सूचनाएँ उपलब्ध कराने का काम भी करती है परन्तु इसमें सीमित नहीं रहती। मानवीय शिक्षा के लोकव्यापीकरण से मानव समझदार होते हैं और स्वयं के शरीर की व्यवस्था को समझते है और उसको बनाये रखने के लिए जिम्मेदार होते है। अतः मानव के स्वास्थ्य के लिए गॉव–समाज के जागृत गुरूजन, शिक्षण–संस्था के प्रबंधक पूरक होते हैं।

आहार की शुद्धता के लिए कृषि और गौपालन के तरीकों में भी शुद्धता आवश्यक हैं। मानवीय सभ्यता में कृषि में प्राकृतिक खाद का उपयोग बीजों का संरक्षण पशुओं के लिए पौष्टिक चारा इन सभी प्रक्रियाओं पर ध्यान दिया जाता है। अजागृत समाज में कृषि में विषैले खाद एवं कीटनाशक के उपयोग से हानिकारक रसायन मानव के आहार में शामिल हो जाते हैं। उनका सेवन करने पर मानव के अर्थ में है। इसीलिए समझदार मानव, परिवार और समाज बिषैले रसायन से रहित कृषि करता है और सबके स्वास्थ्य को बनाये रखने में प्रयासरत रहता है। अतः मानवीय व्यवस्था में आवर्तनशील कृषि की प्रक्रिया पर शोध, शरीर के लिए सही आहार का उत्पादन, भोजन पकाने

की विधि में प्रयोग– यह सभी कार्य समाज के स्तर पर होते है। और इनमें अनेक व्यक्ति व परिवार जुड़े होते हैं।

जागृत परंपरा में आहार की कुछ वस्तुएँ परिवार में उगाते हैं और कुछ विनियम विधि से अन्य परिवारों से प्राप्त करते हैं। अतः मानव की स्वस्थता के लिए गॉव–समाज की जागृति आवश्यकता है। जागृत गॉव–समाज मानव के स्वास्थय में सहजता से भागीदार होता है। जागृत मानव अपने स्वास्थय को सामूहिक भागीदारी से ही सुनिश्चित कर पाता हैं स्वास्थ्य–संयम अकेले में होने वाला कार्यक्रम नहीं है, क्योंकि हर परिवार–मानव अपने आहार, आवास, अलंकार के लिए गॉव और परिवार–समूह पर निर्भर है।

शुद्ध आहार और मानसिक संतुलन के साथ–साथ शरीर में सही पाचन आवश्यक है। सही पाचन सही आहार से होता है और साथ ही, शरीर के प्रर्याप्त श्रम और व्यायाम करने से भी शरीर की पाचन शक्ति पुष्ट होती है। समझदार मानव शरीर के स्वास्थ्य के लिए श्रमपूर्वक उत्पादन करता है। साथ ही व्यायाम को अपने दिनचर्या का भाग बनाता है। व्यायाम से शरीर की मॉसपेशियॉ मजबूत होती है और उनमें फुर्तीलापन बना रहता है। श्रम और व्यायाम मानवीय परंपरा का एक अहम् भाग है। व्यायाम और श्रमपूर्वक उत्पादन का अभ्यास जागृति परिवार ओर शिक्षण संस्था से प्रारंभ होता है। इसी लिए परिवार के सदस्य, मित्र और शिक्षण संस्था के शिक्षक, मानव को व्यायाम और श्रमपूर्वक उत्पादन के अभ्यस्त कराते हैं ताकि उसका शरीर स्वस्थ बना रहा। इसलिए मानव की स्वस्थता में परिवार और समाज के अन्य व्यक्तियों की भागीदारी होती है।

सही आहार, विहार होने से और शरीर की व्यवस्था की समझ होने से शरीर स्वस्थ रहता है। इसके बावजूद अगर शरीर अस्वस्थ होता है तो मानव को औषधि की आवश्यकता होती है। मानवीय व्यवस्था में औषधि के लिए पेड़–पौधे उगाते हैं, उनसे औषधि बनाते हैं, औषधि बनाने के लिए अन्य उपकरणों का उपयोग करते हैं। साथ ही, औषधियों की जानकारी परंपरा से प्राप्त होती है अर्थात मानव के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए औषधि के बारे में मानव सीखता–समझता है ओर उसे अभ्यासपूर्वक बनाता है। अर्थात मानव के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए औषधि उपलब्ध ा कराने में गॉव–समाज के अनेक व्यक्ति भागीदार होते हैं। कुछ औषधि बनाते हैं कुछ औषधि, बनाने के लिए उपकरण का निर्माण करते हैं, कुछ औषधि के लिए कृषि–कार्य करते है कुछ लोग वन से औषधि संग्रहण करते हैं इत्यादि। मानवीय व्यवस्था में गॉव की स्वास्थ्य–संयम समिति,

परिवारों की इन कार्यो में भागीदारी सुनिश्चित करती हैं

इसी तरह मानवीय सभ्यता में गॉव के स्तर पर स्वास्थ्य केंद्र होता है। केंद्र में स्वास्थ्य पर संगोष्ठियॉ होती हैं, स्वास्थ्य बनाये रखने या ठीक करने के लिए मालिश, उपवास, जल–शोधन जैसे उपचार और अन्य औषधि उपलब्ध होते हैं। साथ ही, केंद्र में रोगी के लिए सही और संतुलित आहार बनता है। केंद्र में ज्वर, रक्त दाब, वजन नापने के लिए उपकरणों का प्रयोग होता है। किसी दुर्घटना में लोगों के घायल होने पर शल्यचिकित्सा की आवश्यकता पड़ने पर भी उपकरणों का उपयोग होता है। इसी प्रकार केंद्र में अपशिष्ट के प्रबंधन के लिए स्वास्थ्य संयम समिति और केंद्र योजना बनाते हैं। अतः औषधि बनाने में लेंकर, चिकित्सा करने, यंत्र बनाने और अपशिष्ट के प्रबंधन करने तक – इन सभी क्रियाकलाप में अन्य लोगों की भागीदारी होती। इन सब में समझदार व्यक्तियों की भागीदारी होती है। इन सब समझदार व्यक्तियों की सहज भागीदारी से ही स्वास्थ्य केंद्र का संचालन होता हैं, केंद्र होने से गॉव–समाज में सबके स्वास्थ्य का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। मानवीय सभ्यता में स्वास्थ्य बनाये रखना गॉव अथवा केंद्र का एक मुख्य कार्यक्रम होता है। अर्थात स्वास्थ्य खराब न हो, इस पर जोर दिया जाता है। अपितु अजागृत मानव शरीर की व्यवस्था की समझ के अभाव में अपना ज्यादा ध्यान रोग को ठीक करने में लगा देता है। परन्तु शरीर की व्यवस्था की पहचान न होने पर शरीर को स्वस्थ करना या बनाये रखना असंभव है।

स्वास्थ्य संयम समिति के सदस्य, परिवारों के ही प्रतिनिधि होते है। समिति उपरोक्त उल्लेखित कार्यों के साथ–साथ स्वास्थ्य केंद्र कहाँ बनेगा, किस प्रकार की चिकित्सा होगी, क्या औषधियाँ लगाई जाएँगी, क्या प्रशिक्षण दिए जाएँगे, किन मुद्दो पर शोध होगा, इत्यादि पर निर्णय लेती है। इस तरह स्वास्थ्य–संयम की समिति के सदस्य और साथ में केन्द्र में अन्य साथी–सहयोगी मानव के स्वास्थ्य को बनाये रखने में पूरक होते होते हैं। स्थास्थ्य बनाये रखने में सही आहार, सही समझ, सही विहार के लिए प्रत्येक मानव को अन्य जागृति लोगों के सान्निध्य और सहयोग की आवश्यकता होती है। अतः मानव के स्वास्थ्य में समाज की पूरकता निश्चित है।

अभ्यास व अध्ययन

पाठ–14

उत्सव

मानवीय सँस्कृति में उत्सव, संबंधों के निर्वाह का एक सुखद अवसर है। उत्सव में जागृत परिवार, कुटुंब, गाँव या नगर के सदस्य प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं। एक दूसरे के साथ व्यवहार में मूल्यों का अनुभव करते हैं और तृप्त होते हैं। यह तृप्ति जागृत मानव सभी के साथ महसूस करते हैं अर्थात अपने और दूसरे के बीच सामंजस्यता का अनुभव करते हैं। यह सामंजस्यता स्वयं में अखंडता का अनुभव है। स्वयं में अखंड समाज की समझ स्थापित होने से जागृत मानव किसी को अपना या पराया नहीं मानते और सभी को संबंधी के रूप में पहचानते हैं।

उत्सवों में गाँव या अन्य गाँव के लोग शामिल होते हैं और सभी जागृत व्यक्ति एक दूसरे के साथ हम अपनी खुशी व्यक्त करते हैं। जागृत मानव को प्रसन्न देख कर दूसरा भी प्रसन्न होता है। जागृत मानव को सुखी देख दूसरा भी सुख महसूस करता है और जागृत मानव एक दूसरे को उत्साहित देख स्वयं भी उत्साहित होते हैं। अतः मानवीय सँस्कृति में उत्सव जागृत मानव के सह–अस्तित्वपूर्वक जीने का एक महत्वपूर्ण भाग है।

मानवीय सँस्कृति–सभ्यता में उत्सव कुटुंब, गाँव –नगर या समाज के स्तर पर आयोजित होते हैं। इसमें सबका मिलना; आपस में जान–पहचान बढ़ना; सार्थक मुद्दों पर चर्चा करना; सूचनाओं का आदान–प्रदान होना; महत्वपूर्ण कार्य साथ पूरा करना; साथ मिलकर गीत–गायन, नृत्य और अन्य कला का प्रदर्शन करना; एक दूसरे के साथ जुडाव महसूस करना होता है। ऐसे आयोजन से सभी उपस्थित जागृत व्यक्ति उत्साहित होते हैं। इस उत्सव में अग्रिम पीढ़ी को कई मुद्दों को समझने का अवसर मिलता है। उपस्थित श्रेष्ठ मानव को समाधानपूर्वक जीते हुए देख स्वयं मानवीयता में जीने की प्रेरणा मिलती है। अर्थात उत्सव में भागीदार होने से अग्रिम पीढ़ी के नए संस्कार बनते हैं। इसलिए उत्सव संस्करोत्सव भी होते हैं।

सबको एक साथ लाना, सार्थक गोष्ठियाँ करना, भोजन इत्यादि की तैयारी करना, उत्पादन संबंधित कार्य साथ मिलकर करना – यह जागृत मानव के तन, मन और धन का सदुपयोग है।

साथ ही, उत्सवों का उद्देश्य समझते हुए उन्हें पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर मनाना; अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था को पुष्ट करने में समझदार मानव की भागीदारी होती है।

उदाहरण के लिए मानवीय सँस्कृति में विवाह एक ऐसा उत्सव है जो गाँव–समाज के स्तर पर आयोजित होता है। दोनों स्त्री और पुरुष के परिवारों की स्वीकृति से विवाह का निर्णय होता है। विवाह का उचित समय, वातावरण की अनुकूलता को देखते हुए,उत्सव का आयोजन किया जाता है। विवाह संस्कारोत्सव में दोनों जागृत परिवारों के कुटुंब का मिलन होता है और नए संबंधीयों की पहचान और स्वीकृति होती है। इस तरह जागृत मानव में अखंडता का भाव पुष्ट होता है। विवाहोत्सव में जागृत परिवार, मित्रों, आचार्यों के भागीदार होने से स्त्री और पुरुष के दाम्पत्य जीवन को एक सामूहिक स्वीकृति मिलती है। दोनों वधु और वर साथ–साथ परिवार में समाधान और समृद्धिपूर्वक जीने में सफल हो, समाज में अखंडता और व्यवस्था में सार्वभौमिकता बनाये रखने में सफल हो – इन शुभ कामनाओं के साथ बड़े उनको आशीष देते हैं।

विवाह में दोनों समझदार स्त्री और पुरुष एक दूसरे के साथ मानवीयतापूर्ण आचरण के साथ जीने का संकल्प लेते हैं। साथ ही, अपने आपको परिवार–मानव के रूप में स्थापित करने का संकल्प लेते हैं। अर्थात परिवार में विश्वास, सम्मान, स्नेह, .तज्ञता सहित जीने का; बच्चों के पोषण–संरक्षण पर ध्यान देने का; बुजुर्गों की सेवा करने का, उत्पादन–कार्य में अपना श्रम लगाने का संकल्प लेते हैं। मानवीय परंपरा में इन सभी प्रक्रियाओं में सहजता से पारंगत होने पर दोनों सुखी होते हैं और उनका व्यवहार और कार्य दूसरों के लिए प्रेरणादायक होता है।

परिवार–मानव के साथ–साथ वधु और वर समाज एवं व्यवस्था–मानव के रूप में जीने की निष्ठ भी रखते हैं। समाज में अखंडता के भाव से जीना, व्यवहार में सामाजिक होना, समाज–मानव होने का प्रमाण है। साथ ही, समाज में शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, उत्पादन और विनिमय की उपयुक्त व्यवस्था के लिए कार्यरत होना, उसमें स्वयं की भागीदारी सुनिश्चित करके उसका समझदारीपूर्वक निर्वाह करना, यह व्यवस्था–मानव होने का प्रमाण है। अर्थात विवाह में वधु और वर अपनी जागृति को प्रमाणित करते हुए अपने जीने के फैलाव को बढ़ाते हैं अतः अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाते हैं। मानवीय सभ्यता में समाज में अखंडता और व्यवस्था में सार्वभौमिकता की परंपरा बनाये रखने के लिए वधु–वर विवाहोत्सव पर बड़ों के मार्गदर्शन से अपना दायित्व और कर्त्तव्य तय करते हैं।

इस तरह विवाहोत्सव में समझदार वधु और वर सभी संबंधियों के सम्मुख परिवार, समाज और व्यवस्था–मानव के रूप में जीने का संकल्प लेते हैं और बड़ों से इसमें सफल होने का आशीर्वाद लेते हैं। इसके साथ ही, जागृत बुजुर्ग विवाह के महत्व पर सबके साथ चर्चा करते हैं, समझदार मित्रजन गीत और नृत्य द्वारा एक दाम्पत्य संबंध की समाज में भूमिका स्पष्ट करते हैं, छोटे अपने माता–पिता के संबंध को समझते हैं।

विवाह के लिए दोनों स्त्री और पुरुष का समझदार होना अनिवार्य है। समझदार होने पर ही स्वयं में ईमानदारी और ज़िम्मेदारी का भाव निरंतर बना रहता है। इसीलिए समझदार होने पर ही दोनों अपने विवेक से सह–अस्तित्वपूर्वक जी पाते हैं और दूसरों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत होते हैं। अतः समझदार होने पर अर्थात् मानवीय शिक्षा के संपन्न होने पर मानव का उत्साहित होना स्वाभाविक है। अपने उत्साह को दूसरों के साथ व्यक्त करने के लिए जागृत मानव शिक्षा संस्कारोत्सव मनाते हैं।

शिक्षा संस्कारोत्सव में गुरुजन के साथ–साथ परिवार और कुटुंब के प्रतिनिधि भी एकत्रित होते हैं। इस अवसर पर जिन मानव की शिक्षा संपन्न होती है, वे अपना मूल्यांकन करते हैं अर्थात अपने समझदार होने को सबके सामने सत्यापित करते हैं। साथ ही, अखंड समाज और सर्वभौम व्यवस्था में भागीदार होने का संकल्प लेते हैं। प्रौढ व्यक्तियों के आशीर्वाद और मार्गदर्शन से वे समाधानपूर्वक जीने के लिए प्रोत्साहित होते हैं और अपने भविष्य की कार्य–योजना के प्रति आश्वस्त होते हैं। यह उत्सव अग्रिम पीढ़ी के लिए प्रोत्साहन होते हैं और अपने भविष्य की कार्य–योजना के प्रति आश्वस्त होते हैं। यह उत्सव अग्रिम पीढ़ी के लिए भी सार्थक होता है क्योंकि इस दिवस पर शिक्षा की आवश्यकता और जागृति की पंरपरा को बनाये रखने के महत्व पर चर्चा होती है।

शिक्षा संस्करोत्सव पर युवक (विद्यार्थी) अपने समझदार होने को सत्यापित करने के साथ–साथ मानवीयतापूर्ण आचरण से जीने की निष्ठा की घोषणा भी करते हैं।

समझदार होने का तात्पर्य है कि मानव स्वयं में विश्वास सहित; परिवार और समाज में मूल्यों सहित; मानव, प्रकृति और अस्तित्व के संबंध की स्वीकृति सहित; श्रमपूर्वक उत्पादन सहित जीते हैं। समझदार मानव श्रमपूर्वक उत्पादन करके व्यवसाय में स्वावलंबी होते हैं और न्यायपूर्वक व्यवहार सहित सामाजिक होते हैं। परिवार और समाज में जीते हुए ही मानव प्रमाणित होते हैं।

मानवीय संस्कृति में शिक्षा संपन्न संस्कारोत्सव हर वर्ष गाँव के विद्यालय में स्नातकों के लिए आयोजित होताहै। साथ ही, कुछ गाँव के समूह के महाविद्यालय के स्नातकों का शिक्षण–संस्था में हर वर्ष एक समारोह भी आयोजित होता है। यह उत्सव सभी स्नातकों का एक दूसरे के सत्यापन से प्रेरित होने का अवसर होता है और उपस्थित आचार्यों से परिवार, समाज और व्यवस्था–मानव के रूप में जीने का आशीर्वाद और प्रेरणा मिलती है।

इस तरह मानवीय सँस्कृति में शिक्षा संस्कारोत्सव और विवाह संस्कारोत्सव मानव की जागृति की घोषणा, उसका मूल्यांकन और उसको प्रमाणित करने के लिए अवसर हैं। जागृति को परिवार और जागृत समाज में प्रमाणित करने पर मानव आनंद का अनुभव करते हैं। आनंद में जीने का तात्पर्य है कि मानव जागृतिपूर्णता और अनुभवसंपन्नता सहित जीते हैं। इस स्थिति में मानव सहजता से दूसरों के जागृतिक्रम में सहायक होते हैं। अर्थात अनुभवमूलक विधि से जीने पर जागृत मानव लक्ष्य (समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व) की पूर्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं।

अभ्यास व अध्ययन

1. हमारा परिवार हमारे मित्र कुटुंब के साथ किस तरह से पूरकता निभाता है?
2. परिवार में और परिवार के बाहर हम किस तरह से सेवा कार्य करते हैं?
3. व्यवसाय के स्तर पर हमारा परिवार अन्य परिवारों के साथ किस तरह से आदान–प्रदान करता है?
4. संपर्क और संबंध में क्या भेद है?
5. शिशु के नामंकरण उत्सव में हम क्या–क्या करते है?
6. विवाहोत्सव में क्या होता है?

पाठ–15

मानव इतिहास

मानव के जीने के ढंग का क्रमबद्ध आंकलन इतिहास कहलाता है। इसे मुख्यतः 2 प्रकार से देख सकते हैं प्रथम – क्रम से घटित घटनाओं एवं कृतियों का आंकलन, द्वितीय – मानव मानसिकता एवं उसमें हुए परिवर्तन का आंकलन। द्वितीय भाग ही मानव इतिहास का प्रमुख भाग है। इसे सात प्रकार से पहचाना गया है –

1. सामुदायिक इतिहास
2. शिला एवं धातु युग (कबीलायुग) से संघर्ष युग का इतिहास
3. वैचारिक इतिहास
4. सांस्कृतिक इतिहास
5. आर्थिक इतिहास
6. राजनैतिक इतिहास
7. धार्मिक इतिहास

इसमें से प्रथम 4 प्रकार के इतिहास को हम पूर्व कक्षा में अध्ययन कर चुके हैं। अब हम शेष तीन प्रकार के इतिहास का अध्ययन करेंगे।

आर्थिक इतिहास : जंगल युग में मानव जंगल में रहता था। जंगल ही मानव का आवास था, आहर भी जंगल की वस्तुएँ ही थी। अपनी सुरक्षा के लिए जंगल के शिलाओं एवं लकड़ी का प्रयोग करता था। उस समय वृक्ष, लकड़ी, फल, पत्थर ही अर्थ थे। मानव इन्हें अर्थ के रूप में पहचानता था।

जंगल से निकलकर ग्राम में आने पर मनुष्य के उपयोग की वस्तु कुछ बदल गई, अनेक वस्तुएँ बढ़ गई। .षि से प्राप्त वस्तुएँ, उत्पादन के लिए औज़ार, संग्रहण के लिए पात्र, वस्त्र, मकान, इनके लिए सहायक सभी वस्तुएँ अर्थ के रूप में पहचाने गए। धातु युग आने पर ये सभी औजार और प्रखर हुए – ये ही अर्थ माने गए। युद्ध के अनेक औज़ार भी पहचाने गए वे सभी अर्थ माने गए। विज्ञान युग आने पर अनेक प्रकार के यंत्र, ईधन, वाहन एवं सामरिक उपयोग की वस्तुएँ बनाए गए – ये सभी अर्थ के रूप में पहचाने गए। मानव के सुविधा एंव भोग की वस्तुएँ बढ़ी। इनके साथ मानव की आवश्यकताएँ बढ़ने लगी । भौतिक वस्तुओं के प्राप्ति एवं भोग के लिए मानव के श्रम एवं समय का नियोजन बहुत बढ़ गया। मानव का जीना पूर्णतः भौतिक वस्तुओं के साथ हो गया या भौतिक वस्तुओं के लिए हो गया।

जंगल युग से ही वस्तुओं का या अर्थ का लेन–देन प्रारंभ हुआ। यही विनिमय का प्रारंभिक स्वरूप रहा। प्रधानतः भोजन की वस्तुएँ ही विनिमय में प्रयुक्त होती रही। ग्राम एवं कबीला युग में उपयोगी वस्तुओं के प्रकार बढ़ने के साथ ही विनिमय में विविधता आई। आहार सामग्री एवं आवास की वस्तुओं में भी विनिमय होने लगा। औज़ार के बदले में भी कई प्रकार की वस्तुएँ विनिमय होने लगी। श्रम के आधार पर वस्तुएँ मिलने की संभावना बनी। ग्राम एवं कबीला युग के बाद राजा युग आया। इसमें राज्य को चलाने के लिए सेना एवं सामरिक वस्तुएँ, हाथी, घोड़े जैसे द्रुत गति के वाहन, सेना के लिए वस्त्र, भोजन की आवश्यकता बनी। राजा एवं शासन कार्य में भागीदारी करने वालों के लिए भी अनेक वस्तुओं की आवयकता पड़ी। राज्य चलाने के लिए पूरी सोच के साथ अर्थशास्त्र की रचना हुई। राजकार्यों में भागीदारी करने वालों को इसे पढ़ाने का प्रबंध किया गया। जनसाधारण से कर लिया जाने लगा। राज्य चिन्ह के साथ दुर्लभ धातु यथा सुवर्ण को अर्थ के प्रतीक के रूप में प्रारंभ किया गया। प्रतीक के आधार पर विनिमय प्रणाली प्रारंभ हुई। राजकार्यों में लगे व्यक्तियों को वेतन के रूप में सुवर्ण मुद्राएँ दी गई। इनसे ये प्रतीक मुद्रा कुछ धनाड्य लोगों तक पहुँची। कुछ समय बाद चाँदी को प्रतीक मूल्य के रूप में प्रयोग किया गया। इनकी मात्रा अधिक होने के कारण अनेक लोगों तक प्रतीक मुद्रा पहुँची। फिर भी अधि ाकांश जनता तक ये नहीं पहुँची या अल्प मात्रा में पहुँची। आम जनता वस्तु विनिमय ही करती थी। कर के रूप में अपने उत्पादन का एक निश्चित अंश राज्य को देते रहे।

शासन की कर निर्धारण की गणना शासन के व्यय के आधार पर एवं जनता के आय के आध

ाार पर तय किया गया। सभी वैध कार्यों पर कर लगाए गए। सामाजिक रूप में अशिष्ट कार्यों या अवैध कार्यों पर भी कर लगाए गए। व्यापारियों पर भी कर लगाए गए। अधिक कर देने वाले व्यक्तियों को राज्य शासन में विशेष महत्व मिला। ग्राम एवं कबीला युग में आहार–आवास की वस्तुओं का संग्रह प्रारंभ हुआ। यही राजा युग में सामान्य आवश्यकता, महत्वाकांक्षा की वस्तुएँ एंव प्रतीक के संग्रह की प्रवृति बढ़ी।

विज्ञान युग में पत्र मुद्रा को प्रतीक के रूप में प्रयोग करने से प्रतीक मुद्रा सभी व्यक्तियों तक पहुँची। नकली मुद्रा भी चलन में आ गई। आर्थिक अपराध बढ़ गया। संग्रह एवं भोग बहुत अधिक मात्रा में बढ़ गया। उत्पादन के अपेक्षा व्यापार कार्यों के लिए लोगों की प्रवृत्ति बढ़ी। श्रम से लोग विरत होने लगे।

मशीनों द्वारा उत्पादन विपुल मात्रा में होने से वस्तुओं की उपलब्धता बढ़ी। अपशिष्ट पदार्थों की भी मात्रा बढ़ी जो प्रदूषण के कारण बने। पूरी धरती ही प्रदूषण के चपेट में आ गई। विज्ञान युग में प्रौद्योगिकी एवं व्यापार कार्य के लिए अर्थ शास्त्र की रचना हुई। शासन युग का अर्थशास्त्र प्रचलित था ही। अर्थशास्त्र सामान्य जनता को शिक्षा–प्रक्रिया के द्वारा पढ़ाया जाने लगा। प्रत्येक उत्पाद के मूल्य निर्धारण की प्रणाली विकसित हुई, साथ ही विनिमय प्रक्रिया में कई स्तर बनाकर विक्रय मूल्य का निर्धारण किया गया। ये मूल्य निर्धारण वैज्ञानिक एवं सत्य माने जाने लगे। लाभ अर्जन वैध माना जाने लगा। समाज में आर्थिक असमानता बढ़ी।

राजनैतिक इतिहास : जंगल युग में मानव पशुओं से मुठभेड़ के लिए बाध्य होते रहे। उस समय पशुओं से लड़ना, उन्हें भगाना एक आवश्यकता थी। इसी के साथ अन्य समुदाय या कबीले के साथ भी युद्ध होता था। इनमें विजय प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का सम्मान होता था, वे जान–माल के रक्षक माने जाते थे। यही राजा का प्रारंभिक स्वरूप है।

आगे चलकर राजा के प्रति श्रेष्ठ होने की मान्यता बनी। यहाँ तक माना जाने लगा कि राजा स्वयं ईश्वर का अवतार होता है। राजा कभी गलती नहीं करता। राजा गलती करने वालों को दण्ड देता था एवं श्रेष्ठ आचरण–कार्य करने वालों को सम्मानित करता था। राजा एवं उनके द्वारा नियुक्त व्यक्ति, राज्य की सुरक्षा में लगे रहते थे। प्रजा के जीने के लिए नियम बनाए गए। इन्हें संविधान कहा गया। तत्कालीन विद्वानों ने संविधान तैयार किया। यह धर्म संविधान था। इसके

मूल में रहस्यमयी ईश्वर रहा। इस प्रकार के सभी संविधानों में राजा, गुरु और ईश्वर को खूब महिमा मण्डित किया गया। यह धार्मिक राजनीति का काल कहलाता है। इस समय भय एवं प्रलोभन के द्वारा शासन करना आवश्यक माना गया। प्रधानतः स्वर्ग का प्रलोभन एवं नर्क का भय रहा। द्वितीय स्तर पर राजा के द्वारा दण्ड एवं बहिष्कार का भय तथा पुरस्कार का प्रलोभन रहा।

विज्ञान युग के आने पर कई धार्मिक मान्यताएँ गलत साबित हुई। विज्ञान के द्वारा सामरिक कार्यक्रमों में मदद मिलने के कारण, विज्ञान को राज्याश्रय मिला। युद्ध से त्रस्त राजतंत्र विज्ञान को युद्ध के लिए उपयोग करना शुरू किया। अधिक समरशक्ति सम्पन्न, अधिक वस्तु संग्रह सम्पन्न राष्ट्र विकसित माने जाने लगे। स्वर्ग के सभी प्रलोभन, विज्ञान के कारण धरती पर ही मिलने लगे। इस क्रम में धार्मिक राजनीति का अंत हुआ एवं आर्थिक राजनीति का युग प्रारंभ हुआ।

पहले राजा प्रधानतः वंश परम्परा से ही बनते थे। कभी–कभी युद्ध के विजेता भी राजगद्दी पर बैठे। विज्ञानयुग में एक और बात हुई – कई धार्मिक मान्यताएँ गलत होने के कारण राजा के आचरण पर भी प्रश्न चिन्ह बना। राजा गलती नहीं करता, सदैव राज्य हित में जीते हैं इसे नकार दिया गया। जनता के श्रेष्ठ व्यक्ति राजा के रूप में चुने गए। यह प्रजातंत्र कहलाया।

प्रजातंत्र में केवल 'राजा' चुनने की प्रक्रिया बदली। जनता के प्रतिनिधि ही राजा के रूप में चुने गए एवं जनता ही चुनने का काम करने लगी। सभी व्यस्क व्यक्ति चुनने के कार्य में योग्य माने गए। पहले स्त्रियों को मताधिकार का अधिकार नहीं था, बाद में वह भी माना गया। नए संविधान बने। आम जनता के अधिकारों एवं कर्तव्यों की व्याख्या हुई। शिक्षा–प्रक्रिया के बाद इसका लोकव्यापीकरण किया जाने लगा।

प्रजातंत्र में केवल 'राजा' चुनने की प्रक्रिया बदली। राजा का नाम बदलकर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री जैसे शब्द दिए गए। शासन पूर्ववत शक्ति केन्द्रित ही रहा। भय एवं प्रलोभन के आधार पर शासन का कार्य चलने लगा। दूसरे देशों के साथ संभावित युद्ध से बचने के लिए समर शक्ति विकसित की जाने लगी। दूसरे देशों की समर शक्ति का पता लगाने के लिए गुप्तचर का कार्य पूर्ववत रहा। केवल इसके मात्रा में वृद्धि हुई। रक्षा व्यय क्रमशः बढ़ने लगा।

प्रजातंत्र में भी अपना–पराए से मुक्ति नहीं मिली। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ लाभ एवं

शोषण मुक्त विधि से जी नहीं सके। युद्ध बढ़े, शीत युद्ध प्रारंभ हुआ। देश के भीतर भी जन प्रतिनिधि अपना–पराया से मुक्त नहीं हो सके। वर्ग एवं समुदायवाद बढ़ता गया।

इसी बीच अपने पराए से मुक्ति पाने के उपाय भी खोजे जाने शुरू हुए। सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधि ा मिलकर संयुक्त राष्ट्रसंघ का गठन किए। राष्ट्र के भीतर भी कई आयोग एवं समितियाँ बनी। इस प्रकार अपने पराए से मुक्ति का प्रयास बढ़ने लगा। सफलता अभी भी अपेक्षित है।

अभ्यास व अध्ययन

पाठ–16

मानवीय सभ्यता

मानव सभा के रूप में जीना सभ्यता कहलाता है। सभा का अर्थ है साथ–साथ जीना। मानव परिवार से लेकर विश्व परिवार तक साथ–साथ जीता है। मानव जब परिवार में साथ–साथ जीता है तब हम उसे परिवार सभा नाम देते हैं। जब मानव विश्व परिवार के रूप में जीता है तब हम उसे विश्व परिवार सभा कहते हैं।

साथ–साथ जीने का क्या अर्थ है? यदि हम बाजार या मेले को देखे तो हम पाते हैं कि वहाँ बहुत से लोग हैं । ये सभी अपना–अपना कार्य करने में व्यस्त रहते हैं। उनका सारा ध्यान अपने कार्य में रहता है। अपना कार्य करने के उपरांत सभी वहाँ से चले जाते हैं। क्या इसे हम साथ–साथ जीना कहेंगे? इसका उत्तर है नहीं। इसे हम साथ–साथ जीना नहीं कह सकते। इसे हम साथ–साथ होना कहते हैं। इस उदाहरण में हम देखते हैं कि सभी अपने–अपने कार्य में व्यस्त हैं, सारा ध्यान अपने कार्य में है। ऐसा उदाहरण साथ–साथ जीने का नहीं है। साथ–साथ जीने का अर्थ है सारा ध्यान साथ जीने पर रहना, सारा कार्य साथ–साथ जीने के लिए होना। मानव के लिए अकेले करने के कार्य केवल शरीर के लिए किए गए कार्य हैं। यह केवल शरीर की सफाई एवं शरीर का विश्राम ही है। शेष कार्य जीवन की तृप्ति के लिए होता है। जीवन की तृप्ति साथ–साथ जीने की स्वीकृति एवं साथ जीने से होती है। एक–दूसरे के लिए पूरक होना ही साथ–साथ जीना है। एक–दूसरे के पूरक होने के लिए शिक्षा एक कार्यक्रम है। इसी प्रकार स्वास्थ्य–संरक्षण में पूरक होना, सेवा करना, उत्पादन कार्य में, विनिमय कार्य में, अतिथि सत्कार में, घर की स्वच्छता बनाए रखने में, सार्वजनिक कार्यों में, जल संरक्षण में, वन सरंक्षण में पूरक होना, मानव के साथ–साथ जीने के कार्यक्रम हैं। साथ–साथ जीने को हम साथ–साथ रहना भी कहते हैं।

सभा का सबसे छोटा रूप परिवार है। परिवार में सभी साथ–साथ रहने की स्वीकृति होना, साथ–साथ रहने के सभी कार्यक्रमों में भागीदारी करना ही परिवार सभा के रूप में जीना है।

परिवार सभा में जीने के उपरान्त ही इससे बड़ी सभा में जीने की योग्यता विकसित होती है। इस प्रकार क्रम से विश्व परिवार में जीने की योग्यता होती है। साथ–साथ जीने का स्वरूप स्पष्ट न हो तो साथ जीने में तृप्ति नहीं मिलती, केवल आदेश देने पर ही कुछ कार्यों में भागीदारी होती है। इसी प्रकार व्यवस्था में भागीदारी की स्वीकृति न हो तो भी जीने में तृप्ति नहीं हाती। व्यवस्था में भागीदारी की स्वीकृति न होना अव्यवस्था का एवं दुःख का कारण बनता है।

परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक भागीदारी के बिन्दु निश्चित है। इसमें भागीदारी करना ही मानवीय सभ्यता है। ये बिन्दु निम्नलिखित हैं –

1. शिशु पालन
2. शिक्षा
3. शोध एवं अनुसंधान
4. वस्तुओं का सदुपयोग
5. जल संरक्षण एवं सदुपयोग
6. अपशिष्ट पदार्थ एवं मलमूत्र का प्रबंधन
7. स्वास्थ्य के लिए आहार–पद्धति एवं व्यायाम
8. रोग निवारण के लिए चिकित्सा
9. वस्तुओं के उत्पादन के लिए श्रम का महत्त्व
10. परिवार स्तर पर सेवा
11. अतिथियों का सत्कार

इन सभी बिन्दुओं पर सफलतापूर्वक जीना सभ्यता कहलाता है।

शिशु पालन में एक भाग स्वास्थ्य संरक्षण एवं अनुकूल विधि से पोषण करना है। इसी का

दूसरा भाग जीवन का पोषण है। जीवन में इसी समय से मान्यताएँ बनती हैं। मानव लक्ष्य समान, मानव में जीवन बल एवं जीवन शक्ति समान ये दोनों मान्यताएँ शैशव काल में ही बनना शुरू होना ही शिशु पालन है। इसके लिए अभिभावकों का आचरण ही प्रमुख भाग हैं। इसी की अग्रिम कड़ी में शिक्षा–संस्कार कार्यक्रम है। इसमें सभी मान्यताएँ जानने में बदलती है। शिक्षा संस्कार कार्यक्रम में सभ्यता के सभी बिन्दु पर अध्ययन होता है। अध्ययन प्रमाण पूर्वक होता है। प्रमाण पूर्वक का तात्पर्य शिक्षक प्रमाणित रहते हैं। शिक्षा–संस्कार की पूर्णता शोध एवं अनुसंधान द्वारा ही होती है। इसमें शिक्षा एवं व्यवस्था का लोकव्यापीकरण उद्देश्य रहता है।

वस्तुओं का सदुपयोग एवं जल संरक्षण तथा सदुपयोग मानवीय सभ्यता में ही साकार होता है। वस्तुओं के सदुपयोग से वस्तुओं की सुरक्षा होती है, बार–बार उत्पादन की आवश्यकता नहीं रहती।

मानवीय सभ्यता में अपशिष्ट प्रबंधन बहुत मत्वपूर्ण बिन्दु है। शरीर स्वास्थ्य के लिए यह अनिवार्य है। अपशिष्ट मुख्यतः 2 प्रकार के होते है प्रथम है प्राणावस्था, जीवावस्था एवं ज्ञानावस्था के शरीर के द्वारा त्याज्य भाग। इसमें पेड़–पौधे की गिरी हुई पत्तियाँ एवं अन्य अंग आते हैं जो सुखकर या सड़कर अपशिष्ट की श्रेणी में आ जाते हैं। जीवावस्था एवं ज्ञानावस्था का मल–मूत्र एवं शरीर के अन्य अंग अवयव भी इसी में आते हैं। अपशिष्ट का दूसरा भाग पदार्थावस्था से है। इसमें खनिज एवं धातु का अनुपयोगी भाग आता है जैसे पत्थर के टुकड़े, धातु के छोटे टुकड़े आदि। इसमें से प्रथम भाग का उचित प्रबंधन होने पर ये पुनः उर्वरक के रूप में पूरक होते हैं। द्वितीय भाग का उचित प्रबंधन से पदार्थावस्था के उत्पादन प्रक्रिया में मदद मिलती है। इसका उचित प्रबंधन नहीं होने पर ये हानिकारक प्रभाव छोड़ते हैं।

अनुकूल आहार एवं विहार के पालन से ही शरीर स्वस्थ रहता है। मानवीय सभ्यता में परिवार सभा से ही इस पर चर्चा एवं अभ्यास किया जाता है। शिक्षा–संस्कार द्वारा इसकी अवधारणा बनती है। आहार एवं विहार प्रतिदिन पालन करना अनिवार्य है। शीत, उष्ण एवं वर्षा रूपी प्राकृतिक परिवर्तन होते रहते हैं, इन परिवर्तनों में शरीर स्वस्थ बना रहे ऐसी आहार एवं विहार पद्धति का अभ्यास मानवीय सभयता में होता है। इसे करते हुए भी कभी कोई व्यक्ति रोग ग्रस्त हो जाए या कीट–पशु–पक्षी के आक्रमण से रोगी हो जाए तब उसे नीरोग बनाए रखने के लिए चिकित्सा प्रणाली मानवीय सभ्यता का एक अनिवार्य भाग है। शिक्षा–संस्कार में शरीर के अंग–अवयवों के

क्रियाकलाप एवं इसकी चिकित्सा विधि का अध्ययन किया जाता है।

परिवार स्तर पर श्रम का महत्व, सेवा का महत्व एवं अतिथि सत्कार की आवश्यकता पर चर्चा होती है एवं इसका अभ्यास किया जाता है। यह मानवीय सभ्यता में ही होता है।

इस प्रकार मानवीय सभ्यता में सभी सकारात्मक क्रियाकलापों एवं व्यवहार की स्वीकृति, अध्यापन एवं अभ्यास किया जाता है। अग्रिम पीढ़ी शैशव अवस्था से ही इसे स्वीकार करते हुए अध्ययन एवं अभ्यास द्वारा पारंगत होते हैं। इस प्रकार सतत मानवीय सभ्यता का प्रमाण बना रहता है।

अभ्यास व अध्ययन

पाठ–17

मानवीय व्यवस्था

मानवीय व्यवस्था की मूल इकाई परिवार है। परिवार में ही प्रत्येक व्यक्ति 3 आयामों में प्रमाणित होता है – ये हैं न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य एवं विनिमय–कोष। परिवार में ही समाधान एवं समृद्धि का प्रमाण मिलता है। मानव लक्ष्य को प्रमाणित करने के लिए परिवार की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण हैं। इसलिए मानवीय व्यवस्था को परिवार मूलक व्यवस्था कहते हैं। ग्राम/मुहल्ला/टोला स्तर की व्यवस्था में, मानवीय व्यवस्था के पाँचों आयाम प्रमाणित हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अभय को भी अनुभव करता है। इससे बड़ी व्यवस्था में सह–अस्तित्व प्रमाणित होता है – यह विश्व परिवार व्यवस्था में सफल होता है।

ग्राम/मुहल्ला /टोला व्यवस्था में ग्राम सभा होती है। इस ग्राम सभा में 10 व्यक्ति रहते हैं। ये 10 व्यक्ति एक प्रतिनिधि ग्राम–समूह व्यवस्था के लिए चुनते हैं। इस प्रकार 10 ग्राम/मुहल्ला से 10 सदस्य होते हैं। ये दस सदस्य संयुक्त रूप में 'ग्राम समूह सभा' कहलाते हैं। 'ग्राम समूह सभा' 10 ग्राम/मुहल्ले/टोला में से योग्य व्यक्तियों को विभिन्न समितियों के लिए मनोनीत करते हैं। इस स्तर पर भी 5 समितियाँ होती हैं – उत्पादन–कार्य समिति, विनिमय–कोष समिति, न्याय– सुरक्षा समिति, शिक्षा–संस्कार समिति, स्वास्थ्य–संयम समिति। सभी समितियों के सदस्य एवं ग्राम समूह सभा के सदस्य उपकार–विधि से व्यवस्था का दायित्व निर्वाह करते हैं। कोई भी सदस्य प्रतिफल या मानदेय नहीं लेते हैं।

इस प्रकार इन दस ग्राम/मुहल्ले में पूरकता को बनाए रखने लिए सभी समितियों के सदस्य एवं ग्राम समूह सभा के सदस्य भागीदारी करते हैं। उच्च शिक्षा की व्यवस्था, स्वास्थ्य संयम के बड़े केन्द्र, ऐसे उत्पादन जिनमे अधिक परिवार भागीदारी करे; इन दस ग्राम/मुहल्ले में कार्यरत रहते हैं। इन दस इकाईयों को जोड़ने वाली सड़क दूर संचार की अन्य व्यवस्था, जल प्रबंधन, वन भूमि की व्यवस्था भी इसी स्तर पर होती है।

इन दस इकाईयों के बीच एक विनिमय–कोष होता है। प्रत्येक ग्राम/मुहल्ला अपने आवश्यकता

से अधिक वस्तुओं को, जो अन्य ग्राम/मुहल्ले के लिए आवश्यक हो यहाँ विनिमय करते हैं। इस प्रकार 10 इकाईयों की आवश्यकता की पहचान, उत्पादनों एवं उत्पादक की पहचान, उत्पादन की मात्रा, उत्पादन की लागत मूल्य या श्रम मूल्य इस स्तर पर तय होता है। इस प्रकार 'ग्राम समूह व्यवस्था' दस ग्राम/मुहल्ले की व्यवस्था होती है।

इसी प्रकार क्रम से 10 ग्राम समूह की व्यवस्था होती है– इसे 'ग्राम क्षेत्र व्यवस्था' कहते है। इस क्रम से विश्व राज्य व्यवस्था होती है। इसे सार्वभौम व्यवस्था कहते हैं। इनके नाम क्रम से निम्न हैः–

1. परिवार व्यवस्था
2. परिवार समूह व्यवस्था
3. ग्राम/मुहल्ला व्यवस्था
4. ग्राम समूह व्यवस्था
5. ग्राम क्षेत्र व्यवस्था
6. मंडल व्यवस्था
7. मंडल समूह व्यवस्था
8. मुख्य राज्य व्यवस्था
9. प्रधान राज्य व्यवस्था
10. विश्व राज्य व्यवस्था

इस प्रकार प्रत्येक स्तर पर दस इकाई होने से विश्व राज्य व्यवस्था 1000 करोड़ या दस अरब जनसंख्या की व्यवस्था होती है। प्रत्येक व्यक्ति परिवार व्यवस्था में भागीदारी करते हुए, स्वयं को सार्वभौम व्यवस्था का अंग होना स्वीकारता है। सार्वभौम व्यवस्था में स्वयं की भागीदारी का मूल्यांकन करता है एवं स्वयं में व्यवस्था तथा समग्र व्यवस्था में भागीदारी की घोषणा करता है।

इस प्रकार की व्यवस्था का आधार समाधानित मानव है। मानव समाधानित होते ही विश्व व्यवस्था में भागीदारी को समझने एवं प्रमाणित करने लगता है।

अभ्यास व अध्ययन

1. ग्राम/मुहला व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।
2. ग्राम समूह व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।
3. दस गोपनीय व्यवस्था के स्तरों की सूची बनाइए।

पाठ–18

शिक्षा–संस्कार

मानव के रूप में हम जीव जानवर, पेड़ और पदार्थ से भिन्न हैं और यह भेद हम मानव के संस्कार–अनुषंगी होने के तथ्य से भली भाँति समझ में आता हैं। एक बच्चा अपने माता पिता और परिवार के अन्य सदस्यों के आचरण को देखते हुए अपने आचरण में लाता हैं। जैसे–जैसे षिषु बड़े होते हैं हम अन्य संबंधों को भी पहचानना शुरू करते हैं। जैसे अपने घर के आस–पास, विद्यालय में, खेल के मैदान में हम मित्र के रूप में कई हम उम्र लोगों को स्वीकारते हैं। उनके साथ जीते हुए शिशु का आचरण और विस्तृत होता है और नयी वास्तविकताओं जैसे – खेलना, बाँटना, सहयोग करना आदि को भी देखकर अपने आचरण में लाते हैं। इसको अनुकरण कहते हैं अर्थात दूसरों के देखा देखी करना।

विद्यालय और कक्षा में शिशु अपने गुरुजन के साथ समय व्यतीत करते हैं और उनकी बातों को समझते हैं और उनके अनुसार जीने की कोशिश करते हैं। शिक्षक शिशु को संबंध, व्यवस्था, प्रकृति आदि अनेक वास्तविकताओं से अवगत कराते हैं और उनको सुनकर, समझकर, शिशु अपने जीने को भी व्यवस्थानुसार बनाने की कोशिश करते हैं। इसको हम अनुसरण कहते हैं अर्थात कहे अनुसार करना। यह स्वाभाविक रूप से सभी मानव अपने बचपन से लेकर व्यस्क होने तक करते हैं। यह संस्कार अनुषंगीयता ही है और यह जीव–जानवर से बिल्कुल भिन्न हैं क्योंकि जीव–जानवर, अनुसरण और अनुकरण करने की क्षमता नहीं रखते। गाय, कुत्ता आदि अनेक जानवर – मनुष्य के साथ रहते हुए भी – मनुष्य के भाँति आचरण नहीं करते। वे अपने शरीर और वंश के आधार पर ही अपना आचरण करने के लिए बाध्य हैं। यह बाध्यता मनुष्यों के लिए नहीं हैं।

इस प्रकार सभी मानव अनेक प्रकार की वास्तविकताओं को समझ लेते हैं और अपने अपने आचरण में लाते हैं। इससे कल्पना की वस्तुएँ और बढ जाती हैं और स्वाभाविक रूप से और समझने की उत्सुकता होने लगती हैं। इसके साथ साथ अपने समझ के अनुसार जीने में निष्ठा

भी बढ़ती है। मानव पूरी प्रकृति और अस्तित्व में व्यवस्था को समझना चाहते हैं। और इसके साथ जीना चाहते हैं इसको जिज्ञासा भी कहते हैं। यह जिज्ञासा मानव में होती है क्योंकि हर पल सुखी रहना मानव के समझ पर ही निर्भर करता है।सभी मानव निरंतर सुखपूर्वक जीना चाहते हैं और यह सभी मनुश्य की चाहत है। जिज्ञासा मानव को इसी लक्ष्य को पूरा करने की ओर ले जाती है और समूचे अस्तित्व की व्यवस्था को समझने के लिए तत्पर होते हैं।

मानव अपनी समझ को पूरा करने के लिए ऐसे श्रेष्ठ मानव की संगति को पहचानने की कोशिश करते हैं जो इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि वह समझ गए हैं। इस प्रकार प्रमाणिकता ही श्रेष्ठ मानव की पहचान है। प्रमाणिकता का अर्थ है कि अपने आचरण के माध्यम से दूसरों को समझाने की प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता। गुरु/शिक्षक ही श्रेष्ट हैं और विद्यार्थियों के समझने के लिए प्रेरणा और संस्कार के स्त्रोत हैं।

गुरु/शिक्षक के साथ शिष्य संबंध में जीते हुए विद्यार्थी समूचे अस्तित्व की वास्तविकता को समझने की प्रक्रिया को निष्ठा पूर्वक करते हैं। इसको अध्ययन कहते हैं और यह सभी की आवश्यकता है। यह शिक्षा–संस्कार की व्यवस्था द्वारा ही पूरा होता है। शिक्षा–संस्कार की व्यवस्था में मानव कई प्रकार के लेखन, चित्र भाषा आदि का उपयोग करते हैं और समझने की प्रक्रिया के लिए गति पाते हैं। जैसे कई प्रकार की पुस्तक, मानचित्र, चलचित्र आदि का उपयोग करते हैं। यह सभी वस्तु समझने के लिए सहायक हैं। भाषा और गणित का उपयोग करते हैं।मात्रा और गणना के जरिये रूप की वास्तविकताओं को समझना सहज और सरल हो जाता है। इसके साथ साथ गुण की भाषा जैसे रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र का भी उपयोग करते हैं। भाषा मानव के समझ की अभिव्यक्ति है और इसमें निखार से शिक्षा–संस्कार व्यवस्था को सुलभ और सहज बना पाते हैं। यहाँ यह बात ध्यान देनी की है कि भाषा समझ नहीं है अपितु जो समझे हैं उसकी संप्रेषणा है। इसके साथ साथ जीने में समझ प्रकाशित होती है जो कि चरित्र के रूप में सभी मानव को स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है।

सम्पूर्णता को समझने के साथ मानव की जिज्ञासा पूरी होती है और मानव स्व–अनुशासित हो जाते हैं। अब जीना सही समझ के आधार पर होता है और इसको समाधान भी कहते हैं।निरंतर अपने सुख से जीने की योग्यता को पाते हैं। स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन आता है और यह शिक्षा–संस्कार व्यवस्था की सफलता है। ऐसे समझदार

मानव को अध्ययन कराने के लिए अधिकारी होते हैं। सभी मानव यह अधिकार से संपन्न होना चाहते हैं और यह मानव की स्वाभाविक चाहत है।

इस प्रकार अनुकरण, अनुसरण, जिज्ञासा और स्व–अनुशासन – मानव के रूप में हमारी शिक्षा–संस्कार प्रक्रिया के चार चरण हैं। शुरू में अपने माता–पिता और परिवार में और अंत में अपने गुरु/शिक्षक के साथ अध्ययन कर अपनी निरंतर सुख की चाहतको पूर्ण करते हैं। यह पूरी शिक्षा संबंधपूर्वक पूर्ण होती है ।यह शिक्षा–संस्कार की व्यवस्था है। शिक्षा–संस्कार के पूर्ण होने पर मानव समाधानित होते हैं और परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था में भागीदारी करते हैं।

अध्ययन अपने मित्र और भाई–बहन के साथ करते हैं। एक दूसरे के समझने और जीने में सहयोग करते हैं और संबंध में जीते हैं। सभी मानव का लक्ष्य समाधान है और यह निरंतर सुख है। अस्तित्व में सह अस्तित्व को समझना से अधिक कुछ समझना नहीं होता और इससे कम भी नहीं होता। इसी प्रकार समझने के बाद दूसरों के समझने के पूरक होते हैं।यह व्यवस्था में जीने का प्रमाण है। यह निरंतरता के लिए है इसलिए समय में भी जल्दी या देर से मुक्त है। इसयलिए शिक्षा–संस्कार व्यवस्था 'स्पर्धा' से मुक्त है। संबंधपूर्वक अध्ययन करने से ही इसमें गति मिलती है।

अभ्यास व अध्ययन

1. अनुकरण किसे कहते हैं?
2. अनुसरण किसे कहते हैं?
3. श्रेष्ठ मानव की पहचान क्या है?
4. शिक्षा–संस्कार की सफलता कब हो पाती है?
5. शिक्षा–संस्कार व्यवस्था, स्पर्धा से किस तरह से मुक्त है?

पाठ–19

नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य

चैतन्य इकाई अथवा जीवन में निरंतर जानने, मानन, पहचानने और निर्वाह करने की क्रिया होती है। मानने से जानने की ओर जाना ही अध्ययन एवं शिक्षा का उद्देश्य है। अध्ययनपूर्वक सम्पूर्ण अस्तित्व को जानने की स्थिति ही अनुभव है। अनुभव की वस्तु सत्ता में संपृक्त हर इकाई है। अस्तित्व सह–अस्तित्व है और इसीलिए सत्ता में संपृक्त हर इकाई भी सह–अस्तित्व में है।

अतः सह–अस्तित्व ही परम सत्य है। सह–अस्तित्व अथवा अस्तित्व को जानने की अनुभव संज्ञा है। जागृत मानव अस्तित्व (सत्य) में अनुभूत होता है और सत्य के वैभव को तीन प्रकार से समझता है:

1. स्थिति सत्य
2. वस्तुस्थिति सत्य
3. वस्तुगत सत्य

अस्तित्व ही सत्य है और सह–अस्तित्व ही परम सत्य है। अर्थात अस्तित्व का सह–अस्तित्वपूर्वक होना; सत्य की स्थिति है। स्थिति सत्य सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। अतः अस्तित्व स्थिर है, इसमें कुछ बढ़ता या घटता नहीं है – यह स्थितिपूर्ण है। व्यापक सत्ता की पारदर्शीयता और पारगामीयता के कारण सत्ता में संपृक्त हर इकाई क्रमशः सह–अस्तित्वपूर्वक नियंत्रित ऊर्जा संपन्न एवं क्रियाशील है।

वस्तुस्थिति सत्य का अर्थ है कि सत्ता में संपृक्त हर वस्तु (इकाई) की एक निश्चित स्थिति है। इकाई की स्थिति का तात्पर्य उसके देश, दिशा और काल से है। अर्थात हर इकाई ;वस्तुद्धद्ध का देश, दिशा और काल होता है। यह हम मानव के संदर्भ में व्याख्यायित होता है। जीने के लिए वस्तु का स्थान, दिशा, दूरी, कोण, काल पहचानना अनिवार्य है। इसके पश्चात ही किसी वस्तु का

मानवीय व्यवस्था के अथ में उपयोग–सदुपयोग कर सकते हैं।

इकाई या वस्तु के विस्तार को देश कहते हैं। जैसे कि पानी के कण का विस्तार रूप समुद्र, नदी, तालाब या झील है। इसी लिए समुद्र एक देश है और नदी, तालाब और झील भी एक देश हैं। इसी तरह मिट्टी के कण का विस्तार देखें तो सड़क, पहाड़, टापू और धरती एक देश है। ध ारती एक देश है इसलिए वह अखंड है। धरती के भीतर जितनी भी रचनाएँ हैं जैसे पेड़, पशु–पक्षी, जंगल, नदी, टापू, मानव, इत्यादि वह भी देश है और वह और धरती अविभाजिय है। सुविधा के लिए मानव अन्य देश (स्थानों) को अलग–अलग नाम देते हैं जैसे दिल्ली, रायुपर, अछोटी, मुरमंदा, नर्मदा नदी, कैलाश पर्वत। इन नाम से अपना या अन्य वस्तु का स्थान इंगित करते हैं । जैसे कि मैं मुरमंदा में रहता हूँ, मैं नदी किनारे बैठा हूँ, मेंढक तालाब के पास दिखते हैं।

इसी तरह, अस्तित्व में किसी भी इकाई (वस्तु)का स्थान सटीकता से इंगित करने के लिए दिशा का भी उपयोग करते हैं।जैसे नर्मदा नदी मध्य भारत से शुरू होती है। मेरा घर पाठशाला के दायीं तरफ है। दिल्ली छत्तीसगढ से उत्तरी दिशा में है। वस्तु की दिशा किसी दो ध्रुव बिंदु के आधार पर निश्चित होती है। जैसे मनुश्य अपने एवं सूर्य के आधार पर दिशा तय करते हैं। सूर्य जहाँ से उगता हुआ दिखाई देता है उसको हम पूर्व दिशा कहते हैं। इसी तरह उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम अपनी सुविधा के लिए मानव द्वारा दिए गए नाम हैं। जैसे कि जल यात्रा में दिशा के आधार पर ही जलयान अपना रास्ता तय करते हैं;। घर बनाते समय सूर्य की रौशनी और हवा की दिशा के आधार पर खिड़कियों, कमरों की जगह तय करते हैं ताकि अधिकतम रौशनी और हवा दिनभर घर में आती रहे।

इसी के साथ काल भी किसी वस्तु की स्थिति इंगित करने के लिए उपयोगी है। जैसे मानव शरीर क्रियाशील है। इस क्रिया के एक अंश को काल कहते हैं। उदाहरण के रूप में शैशव अवस्था एक काल है, युवावस्था एक काल है, वृद्धावस्था एक काल है। अर्थात क्रिया की अवधि की काल संज्ञा है। इसी लिए मानव की सुविधा के लिए सूर्य और धरती के निरंतर क्रियाशील होने से आधार पर समय निर्धारित किया है। जैसे धरती का सूर्य के चारों ओर घूमने की अवध् ि को 1 वर्ष या 365 दिन कहते है।

देश, दिशा, काल मानव का धरती पर व्यवस्थापूर्वक जीने के अर्थ में स्पष्ट होता है।मानव

समझदार होने से ही स्थान, दूरी, दिशा, काल सार्थक होता है। समझदारी अर्थात् धरती पर चारों अवस्थाओं के साथ सह–अस्तित्वपूर्वक जीना । इस लक्ष्य की पूर्ति और निरंतरता के लिए मानव का जागृत होना अनिवार्य है।

जागृत मानव ही सह–अस्तित्व को समझता है।, सत्ता में संपृक्त वस्तु को समझता है, उसके साथ संबंध पहचानता है और उसकी अपने लिए उपयोगिता पूरकता पहचानता है।

अजागृत मानव, संबंध या मूल्य की निरंतरता विहीन होने से अथवा लक्ष्य की अस्पष्टता होने से वस्तु का उपयोगिता पूरकता विधि के बजाय उसका शोषणपूर्वक उपयोग (या दुरूपयोग) करता है। जैसे आजकल अनेक यंत्रों का युद्ध में उपयोग हो रहा है न कि मानवीय शिक्षा के लोकव्यापीकरण में।

स्थिति सत्य, वस्तुस्थिति सत्य के अतिरिक्त वस्तुगत सत्य भी अस्तित्व की महिमा है। सत्ता में संपृक्त हर इकाई का रूप, गुण, स्वभाव और धर्म है। इकाई की समझ उसके रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के संयुक्त रूप में होती है अर्थात रूप, गुण, स्वभाव और धर्म इकाई से अविभाजिय है। रूप से इकाई का आकार, आयतन और घन स्पष्ट होता है; गुण से इकाई का परस्परता में प्रभाव पहचानते हैं; स्वभाव से इकाई की परस्परता (समग्र व्यवस्था) में भागीदारी समझते हैं और धर्म से इकाई की स्वयं में व्यवस्था (अथवा इकाईत्व) समझते हैं। इस सत्य के आधार पर जागृत मानव प्रकृति (इकाई–समूह) में चार अवस्थाएँ पहचानता है – पदार्थावस्था, प्राण–अवस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था। इन चारों अवस्थाओं के रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के आधार पर अस्तित्व में इकाइयों की अलग–अलग और निश्चित भागीदारी होती है। समझदार मानव ही भागीदारी को पहचानता है और उसका निर्वाह करता है।

सत्य के वैभव को समझना सभी मानव के लिए संभव है क्योंकि सत्ता में संपृक्त प्रकृति की अनुभूति से मानव जागृत होता है और उसका हर इकाई के साथ सह–अस्तित्वपूर्वक जीना अथवा मानवीयता से जीना सहज होता है। अर्थात सत्य की समझ के साथ धर्म और न्याय सहित जीना स्वाभाविक है। सत्य की समझ में जागृत मानव पूरे अस्तित्व के साथ सह–अस्तित्व के नियम से जीते हैं। धर्म में वह स्वयं के साथ और प्रकृति के समूह के साथ सह–अस्तित्वपूर्वक जीता है और सुखी होता है। समझदार मानव अस्तित्व समझता है, इसीलिए वह उसके साथ व्यवस्थापूर्वक

जीता है। इसी तरह वह प्रकृति को समझता है और उसके साथ भी व्यवस्थापूर्वक जीता है। यानि कि जागृत मानव मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ अपना संबंध पहचानता है और प्राकृतिक ऐश्वर्य पर आवर्तनशील प्रक्रिया से उत्पादन कार्य करता है। अतः प्रकृति को संवर्धित करते हुए वह उसका उपयोग–सदुपयोग करता है और अग्रिम पीढ़ी के लिए प्रकृति को सुरक्षित भी रखता है। अर्थात मानव स्वयं में समाधानित होता है और इसीलिए सबके साथ सह–अस्तित्वपूर्वक जी पाता है। ऐसे जी पाना ही मानव का तृप्ति बिंदु है। अतः समाधानित होना और सुखपूर्वक जीना ही मानव का धर्म है।

जागृति के स्तर पर मानव–मानव को समझता है और उसके साथ समाधानपूर्वक जीता है। न्याय में जीने में जागृत मानव मूल्यों के आदान–प्रदान से तृप्त होते हैं। अतः जागृत जीवन सत्य, धर्म और न्याय पहचानता है। और जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में जागृत मानव व्यवस्था में जीता है। न्याय, धर्म, सत्य का फैलाव अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था तक होता है। अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था मानवीय सभ्यता और सँस्कृति का घोतक है।

जीवन (चैतन्य) के अतिरिक्त अस्तित्व में जड़ इकाइयाँ होती हैं। इनकी व्यवस्था नियम, नियंत्रण और संतुलन के आधार पर होती है।

पदार्थावस्था की इकाइयों में जागृत मानव नियम पहचानता है। पदार्थावस्था में इकाइयाँ ठोस, तरल या विरल होती हैं और इसमें भौतिक–रसायनिक क्रियाएँ होती हैं। यह क्रियाएँ नियम अनुसार होती हैं अर्थात इकाइयों के (परमाणु या अणु के) संगठन अनुसार होती है। इन क्रियाओं को रचना–विरचना के रूप से भी पहचाना जाता है। जैसे लोहा, हवा, पानी के प्रभाव से विरचित होता है, यह एक रासायनिक क्रिया है। इन परिस्थितियों में लोहे का आचरण हमेशा ऐसा ही होता है। यह निश्चित्ता ही पदार्थावस्था का नियम है। साथ ही, गेंद या कोई भी ठोस इकाई को हवा में फेंकने से वह निश्चित रूप से वापस धरती पर आती है; पानी या अन्य तरल इकाई को गिराने से वह अन्य तरल वस्तुओं की ओर बहती है अर्थात ढ़लान की ओर बहती है। पानी का भाप बनने से या कोई और विरल इकाई के होने से वह ऊपर आसमान की ओर उठती है। अर्थात ठेस इकाइयाँ ठोस के साथ रहती हैं, तरल इकाइयाँ तरल के साथ रहती हैं और विरल इकाइयाँ विरल के साथ रहती हैं – यह व्यवस्था पदार्थावस्था की सभी इकाइयों में निहित हैं। यह पदार्थावस्था का नियम अथवा आचरण है।

प्राण–अवस्था की इकाइयों में नियंत्रण दिखता है। जैसे की पेड़–पौधे अपने लिए अनुकूल पदार्थ मिट्टी से लेते हैं। साथ ही, एक प्रजाति के पेड़ या पौधे का होना किसी दूसरी प्रजाति के पेड़ या पौधे के होने (या फलने) के लिए अनुकूल या प्रतिकूल होता है। जैसे कि एक पेड़ जो ध रती से अधिक मात्रा में पानी लेता है वह किसी ऐसे पेड़ के साथ उगता है जिसे कम मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। यह प्रकृति में निहित नियंत्रण है।

पदार्थावस्था की इकाई, जैसे पहाड़ में रचना–विरचना का नियम है परन्तु उसकी आयु, लम्बाई, चौड़ाई इत्यादि किसी नियम–अनुसार निश्चित नहीं है। अपितु प्राण–अवस्था में रचना–विरचना के नियम के साथ–साथ उसकी आयु, लम्बाई, चौड़ाई, रंग, लिंग, वृद्धि, प्रजनन दर भी निश्चित है। यह निश्चित्ता अथवा नियंत्रण प्राण–अवस्था की मूल इकाई प्राण–कोशिका के रचना सूत्र में परिभाषित हैं। अतः प्राण–अवस्था में नियम के साथ–साथ नियंत्रण भी है। प्राण–अवस्था पदार्थावस्था से विकसित इकाई होने से उसमें नियम से अधिक नियंत्रण है। इसीलिए प्राण–अवस्था नियंत्रण सहित व्यवस्था में है और अपने से बड़ी व्यवस्था के पूरक हैं।

जीवावस्था की इकाइयों में मानव संतुलन पहचानता है। पशु–पक्षी में नर और मादा में एक निश्चित अनुपात दिखता है। पशु–पक्षी में माँसाहारी और शाकाहारी में भी एक निश्चित अनुपात दिखता है। जीवावस्था इस संतुलनपूर्वक ही व्यवस्था में हैं और अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदार हैं। साथ ही मानव शरीर में भी नर और मादा में एक निश्चित अनुपात दिखता है। धरती में मानव में नर और मादा का 1:1 अनुपात लगभग 1:1बना रहता है। यह संतुलन प्रकृति में निहित है। जीवावस्था पदार्थावस्था और प्राण–अवस्था से ज़्यादा विकसित होने के कारण नियम, नियंत्रण सहित संतुलन में है। जीव–शरीर में नियमवश प्राण–कोशिकाओं में रचना–विरचना की क्रिया होती है, नियंत्रणपूर्वक जीव–शरीर की एक निश्चित आयु होती है और संतुलनपूर्वक पशु–पक्षी में एक निश्चित अनुपात होता है।

जीवावस्था में व्यवस्था की संज्ञा संतुलन है, प्राण–अवस्थ्ज्ञा में व्यवस्था की संज्ञा नियंत्रण है और पदार्थावस्था में व्यवस्था की संज्ञा नियम है। अतः संतुलन, नियंत्रण और नियम तीनों व्यवस्था को ही इंगित करते हैं। संतुलन में नियम और नियंत्रण समाहित हैं और नियंत्रण में नियम समाहित हैं। संतुलन, नियंत्रण और नियम अस्तित्व में जड़ इकाइयों की व्यवस्था को स्पष्ट करते हैं और न्याय, धर्म और सत्य अस्तित्व में मानव इकाई अथवा व्यवस्था को स्पष्ट

करते हैं। अर्थात नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य चारों अवस्थाओं में अथवा अस्तित्व में व्यवस्था का घोतक है।

अभ्यास व अध्ययन

पाठ – 20

भौतिक, रासायनिक और जीवन क्रिया

सूर्य की ताप से लगातार धरती की सतह पर जल गर्म होता हुआ वाष्प बनकर बादल का रूप धारण करता है और हवा की बहती हुई गति के साथ किसी ठंडे स्थान पर पहुंचकर वर्शा का रूप लेकर पुनः धरती की सतह पर जल बनकर लौट जाता है। हवा का बहना भी सूर्य के ताप की विभिन्नता से है। जल का एक स्थान पर एकत्रित होने से वहाँ 'कई' पैदा होती है जिसमें अनेकों प्रकार के कीड़े मकोड़े हमें दिखते हैं। चिड़ियाँ और छोटे जानवर इन कीड़े मकोड़े को खाने के लिए आस–पास रहते हैं। पानी के होने से आस–पास खूब घास, पौधे, फूल और फल भी उग जाते हैं जिनमें अनेकों पक्षी रहने लगते हैं। पशु–पक्षी – पेड़–पौधे के बीजों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाकर उनके होने को औश्र समृद्ध करते हैं और वहाँ वनस्पति का स्वरूप और घना हो जाता है। जंगलों में वनस्पति वहाँ की वायु को और ठंडा करती है और वहाँ वर्शा की संभावना बढ़ जाती है। मानव भी पानी, लकड़ी, फल, फूल आदि के लिए ऐसी प्राकृतिक व्यवस्था पर निर्भर है ।उसका घर, परिवार और समाज भी ऐसे वातावरण के आस–पास ही बना है।

पृथ्वी की यह व्यवस्था एक निरंतर क्रिया है और इस क्रिया समुच्यय को हम प्रकृति भी कहते हैं। प्रकृति में हर वस्तु, हर इकाई किसी न किसी क्रिया में लग्न है और यह क्रियाएँ – तीन प्रकार की हैं – भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया और जीवन क्रिया।

मानव जीवन क्रिया, भौतिक और रासायनिक क्रिया का सम्मिलित स्वरूप है। मानव शरीर एक भौतिक और रासायनिक रचना है। शरीर की आयु रहने तक भौतिक और रासायनिक क्रिया लगातार बने रहते हैं। अनुभव इच्छा, विचार आशा – जीवन क्रिया का स्वरूप है जो अक्षय है और निरंतर क्रियाशील है।

मानव वायुमंडल में साँस लेते हैं और हवा स्वयं में एक भौतिक रासायनिक रचना है और साँस लेने से वह फेफड़े द्वारा शरीर के अन्दर जाकर खून में कोशों के साथ रासायनिक क्रिया करती है और फिर खून द्वारा शरीर के हर कोष में पहुँच जाती है। जल स्वयं में एक रासायनिक रचना

है और यह शरीर में तरह तरह की रासायनिक क्रियाकलाप में सहयोग करती है। पाचन से रस बनने एवं रक्त बनने तक वह कई रासायनिक क्रिया को परिणाम देती है। मानव फल, साग, सब्ज़ी, चावल, रोटी आदि खाते हैं और यह सब भौतिक रासायनिक पदार्थ हैं। भोजन को हम अपने दाँतों से चबा कर एक भौतिक अंजाम देते हैं और जो कि मुँह में रस के साथ मिलकर एक रासायनिक पदार्थ के रूप में पेट में पचता है। पाचन क्रिया एक रासायनिक क्रिया है और पचा हुआ भोजन शरीर से निष्कासित होता है और पुनः वह विचरित होकर तरह तरह के रसायन और भौतिक वस्तु बनकर पदार्थ अवस्था को समृद्ध करता है।

हम अपने माता, पिता, मित्रों को पहचानते हैं। हमारे परिवार में हमारे माता–पिता का स्नेह पाकर हम सुखी होते हैं। सुखी होना, संबंध को पहचानायह जीवन क्रिया है। सुखी होना रासायनिक या भौतिक क्रिया नहीं है।

हम सभी मानव कई तरह की इच्छा करते हैं। शाम हो हमारी इच्छा होती है कि हम अपने मित्रों के साथ खेले, बातें करें। इच्छा करना – यह जीवन क्रिया है, रासायनिक या भौतिक क्रिया नहीं है। खेलते हुए विचार आता है कि पिताजी खेत से वापस आ गएं होंगे और हम अपना खेल समाप्त कर घर पहुँच जाते हैं। विचार करना – जीवन किया है, भौतिक या रासायनिक क्रिया नहीं है। रात को माँ ने स्वादिष्ट भाजन बनाया होता हैं। स्वाद को आँखों से या जीभ से पहचानना – यह भी जीवन क्रिया है, भौतिक या रासायनिक क्रिया नहीं है। इस प्रकार सुखी होना या संबंध ा को पहचाना, इच्छा करना, विचार करना और स्वाद लेना – यह सभी क्रियाएँ हैं और जीवन क्रिया है।

आइये भौतिक और रासायनिक क्रिया को और अच्छे से समझें। भौतिक क्रिया में किसी भी पदार्थ रूपी इकाई की भौतिक स्थिति में बदलाव आता है जैसे पानी गर्म होकर वाष्प बन जाता है, ठंडा होकर बर्फ बनता है और सामान्य वातावरण में तरल के रूप में रहता है। यह भौतिक क्रिया करता हुआ बर्फ, पानी और वाष्प का रूप लेता है। हम किसी भौतिक विधि से जैसे थोड़ी ताप देकर बर्फ को फिर से पानी बना सकते हैं। प्रकृति में भौतिक क्रिया के अनेक उद्धरण हैं जैसे नदी का बहना, पहाड़ में बर्फ का पिघलना, वायु या बादल का चलना इत्यादि। इसके साथ मानव अपनी शरीर को जो भी गति देते हैं जैसे दौड़ते हैं, उठते हैं, बैठते हैं – यह शरीर से भौतिक क्रिया करते हैं।

रासायनिक क्रिया में पदार्थ अपने आचरण को बदल लेता है और एक नए आचरण के साथ भागीदारी करता है। जैसे हम जो दाल या सब्ज़ी खाते हैं। वह पानी, नमक और मसालों के साथ मिलकर एक नया रस बन जाता है जो शरीर को पचाने के लिए आसन होता है। हर तरह के रस–रसायन ही हैं। मुँह में 'लार' के रूप में रस है, पेट में पाचन क्रिया के लिए रस है, रक्त एक प्रकार का रस है और इनकी द्वारा की गयी क्रिया प्रक्रिया भी रासायनिक क्रिया प्रक्रिया है।

जीवन क्रिया के रूप में सुखी होना, संबंधों को पहचाना, इच्छा, विचार और स्वाद लेना यह सभी अक्षय क्रिया है अर्थात जो खत्म नहीं होती और निरंतर है। इनको बनाये रखने के लिए हमें कुछ प्रयुक्ति नहीं करनी पड़ती है और यह बनी रहती है। इनमें हम सिर्फ गुणात्मक परिवर्तन कर सकते हैं अर्थात हम क्या इच्छा करें, कैसे और किस प्रकार के विचार करें आदि इनमें बदलवा ला सकते हैं। लेकिन हम इच्छा ही न करें, विचार ही न करें यह प्राकृतिक और स्वाभाविक रूप से संभव नहीं है।

जीवन क्रिया सूक्ष्म है ताप भौतिक –रासायनिक क्रिया को नियंत्रित करती है । जैसे हम इच्छा कर दौड़ना शुरू कर सकते हैं और तब तक दौड़ते रहें जब तक रूकने की इच्छा न करें। इस प्रकार शरीर की भौतिक क्रिया का नियंत्रण हमारी इच्छा शक्ति से है। शरीर में रासायनिक क्रिया को भी जीवन क्रिया द्वारा नियंत्रित करते हैं – जैसे क्या खाना खाते हैं उससे शरीर में जो रस या उपरस बनते हैं ।यह` शरीर की रासायनिक क्रिया पर नियंत्रण है। खाना खाकर पानी पीने से हम पेट में चलने वाली रासायनिक क्रिया धीमी हो जाती हैं।

प्रकृति में ये तीन क्रियाएँ ही है । इनके अलावा और कोई क्रिया नहीं है। पदार्थ अवस्था में हर इकाई, प्राण अवस्था में वनस्पति जगत, जीव शरीर और मानव शरीर मात्र भौतिक – रासायनिक रचना है ये भौतिक और रासायनिक क्रिया, में ही संलग्न है।

भौतिक और रासायनिक क्रिया को हम जड़ क्रिया भी कहते हैं। मानव ही प्रकृति को` समझता है इसलिए मानव ही इन क्रियाओं का दृष्टा है। भौतिक, रासायनिक क्रिया स्थूल है और चैतन्य क्रिया सूक्ष्म है अर्थात मानव में चैतन्य क्रिया ही भौतिक और रासायनिक क्रिया का दृष्टा है।

तीनों क्रिया परस्पर पूरक है और यह प्रकृति की व्यवस्था है। मानव शरीर जो कि एक भौतिक और रासायनिक रचना है। यह भौतिक और रासायनिक वस्तु से पोषित होता है, संरक्षित होता

है। जीवन क्रिया वास्तविकता को जानकार और संबंध को पहचानकर तृप्त होती है और उसमें परिमार्जन होता हैं। मानव जीवन क्रिया की तृप्ति के लिए भौतिक और रासायनिक वस्तु का उत्पादन, उपयोग या सदुपयोग करते हैं।

अभ्यास व अध्ययन

1. हमारे शरीर में श्वसन–प्रश्वसन, पानी पीना एवं पाचन की क्रियाओं में होनेवाली भौतिक, रासायनिक क्रियाओं को स्पष्ट कीजिए।
2. जीवन क्रियाएँ कौन–कौन सी है?
3. मानव शरीर में जो रासायनिक क्रियाएँ होती है, उनमें से कुछ क्रियाओं को बताइए।
4. जीवन क्रियाएँ और भौतिक रासायनिक क्रियाओं का संबंध स्पष्ट कीजिए।

पाठ 21

नीति–त्रय

अस्तित्व में विकास और जागृति की ओर निरंतर गति है। हमारी पृथ्वी पर विकास क्रम को स्पष्ट रूप में देख सकते हैं। पदार्थ अवस्था की इकाइयों के साथ प्राण अवस्था, जीव अवस्था ओर मानव के रूप में अनेकों रचनाएँ हैं। हर रचना के मूल में अनेक प्रकार के परमाणु हैं। पृथ्वी पर 100 से अधिक की संख्या के परमाणु को पहचाना गया है ये अस्तितव में विकास क्रम को इंगित करते हैं। रचना–विरचना के स्वभाव के साथ पदार्थ–अवस्था है। सरक–मारक स्वभाव के साथ प्राण अवस्था की रचना है क्रूर–अक्रूर स्वभाव के साथ जीवन–अवस्था की रचना है। रचनाओं के पृष्ठभूमि में परमाणु में विकास क्रम अस्तित्व में नियम के रूप में स्पष्ट है।

विकास के साथ जागृति भी है। यह भी रचनाओं और उनकी परमपरा के रूप में स्पष्ट है जैसे मानव–जीवन और जड़ शरीर के साथ एक रचना है। शरीर जीवन जागृति के लिए सहायक है। इसी प्रकार मानव अन्य मानव के साथ जीकर जागृति को समझता है और प्रमाणित करता है। इसलिए मानव परिवार और समाज में रहता है – जो एक व्यवस्था है। इस प्रकार जीवन में जागृति अर्थात गुणात्मक परिवर्तन अस्तित्व में नियम के रूप में स्पष्ट है। अस्तित्व में विकास और जागृति की ओर नियंत्रित गति को हम नियति भी कहते हैं।

मानव के हर क्रिया–कलाप से जागृति की और गति बने–ऐसा सभी मानव की चाहत है। अपने व्यवसाय की गतिविधियों में, मानव के साथ व्यवहार में, विचार और विश्लेषण में, और अनुभव में– हर क्रियाकलाप में गुणात्मक वृद्धि सभी को सहज स्वीकार होता है।

गुणात्मक वृद्धि या पर्तिवर्तन मूल्य को पहचानते हुए जीने से होता है। व्यवसाय में उपयोगिता और कला मूल्य को पहचानने का अभ्यास करते हुए अपना व्यवसाय का कार्य करते हैं। इस प्रकार व्यवसाय में नियंत्रण रहता है। समझदार मानव अपनी परिवार की आवश्यकता को भी पहचानते हैं अपने आय और व्यय में तालमेल रखते हैं। व्यवहार में जागृत मानव विश्वास, सम्मान, स्नेह, ममता, कृतज्ञयता जैसे मूल्यों का निर्वाह करते हैं और दूसरों के साथ सम्बंध में

सुखी होते हैं। सम्बंधी भी इन मूल्य को पहचानकर, इनका निर्वाह करता है। इस प्रकार दोनो के गुणात्मक परिवर्तन की संभावनाएं होती हैं।

सभी मानव में गुणात्मक परिवर्तन मूल्य के आदान–प्रदान से होता है। सभी स्वाभाविक रूप में ऐसी व्यवस्था में जीने के लिए प्रेरित हैं जो मूल्य प्रधान हो। इस व्यवस्था को मानवीय व्यवस्था कहते हैं। इस व्यवस्था को तीन नीतियों के माध्यम से समझते हैं और जिन्हे हम–अर्थ नीति और धम कहते हैं।

इन तीनों नीतियों को समझना और इन नीतियों से बनी व्यवस्था में जीने से समाधान, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्व सुलभ होता है।

अर्थ–नीति में मानवीय व्यवस्था के आर्थिक कार्यक्रम की व्याख्या होती है। समाज के रूप में क्या उत्पादन या निर्माण करें, उत्पादन और निर्माण किस प्रकार करें, कितना करें, उसका विनिमय कैसे हो, श्रम मूल्य कितना हो इत्यादि। इस प्रकार की स्पष्टता के लिए नीतियों को हम अर्थ–नीति कहते हैं।

अखंड समाज में हर परिवार समृद्ध हो–इस लक्ष्य को पाना–अर्थ–नीति का कार्यक्रम है। भोजन, आवास, अलंकार और दूरसंचार की वस्तुएँ मानव की आवश्यकता है। सारा आर्थिक कार्यक्रम इन वस्तु के उत्पादन और निर्माण के लिए ही है। ये वस्तुएँ शरीर की आवश्यकता की पूर्ति करती हैं और इनको पाकर शरीर स्वास्थ रहता है। जिससे संबंधो का निर्वाह होता है। सम्बंध का निर्वाह ही अर्थ–नीति का प्रयोजन है।

मानव समाज में जिन वस्तु का उत्पादन होता है, उनकी प्राकृतिक व्यवस्था को बनाये रखने में महत्वपूर्ण है जंगल, जीव जानवर, वातावरण – यह सब प्राकृतिक सम्पदा है। मानव का शरीर भी एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक रचना है जिसकी प्राकृतिक घटनाओं से सुरक्षा अनिवार्य हैं इसकी सुरक्षा बीमारियों से इसका बचाव, रहने की जगह के साफ–सफाई इत्यादि से होती है यह राज्य नीति में उत्तरित होती है।

अंत में राज्य नीति मानव के जीवन की सुरक्षा के लिए भी उत्तरदायी है। मानव के अमानवीयता से सुरक्षित रखना–राज्य–नीति का कार्यक्रम है। जैसे आज के दौर में कई प्रकार के अश्लील,

रहस्यमयी, हिंसात्मक पुस्तक, फिल्में आदि समाज में बहुतायत में सुलभ है। यह अमानवीयता का प्रकाशन है जो सभी के लिए असुरक्षा पैदा करता है। मानव समाज में अमानीवयता का पोषण न हो इसके लिए प्रचार, प्रसार का कार्य राज्य–नीति का भाग है। इस प्रकार राज्य नीति का मुख्य उद्देश्य धन, तन और मन की सुरक्षा है।

मानवीय–व्यवस्था के तीसरी नीति–धर्म–नीति है जो मानव समाज को समाधान के ओर प्रेरणा देती है। सभी मानव के पास धन, तन और मन के रूप में वस्तु या वास्तविकताएं है। ध ान–उत्पादित निर्मित वस्तु के लिए उपयुक्त शब्द है। तन–मानव शरीर और मन जीवन के लिए उपयुक्त शब्द है। इन तीनों वस्तुओं का सदुपयोग करने की नीति को हम धर्म नीति कहते है।

सदुपयोग का अर्थ है गुरू मूल्य या बड़े उद्देश्य के लिए उपयोग करना। इसलिए जब धन का शिष्ट मूल्य के लिए उपयोग करते है तो धन का सदुपयोग होता है। शिष्ट मूल्य मानवीय व्यवहार का आयाम है जिसमे विश्वास, सम्मान आदि भाव को मुद्रा, भंगिमा ओर अंगहार (कपड़े, अलंकार आदि) के साथ व्यक्त करते है। जैसे जब कोई मित्र हमारे घर आता है तो हम उसको आराम से बैठाते हैं, उसको आवश्यकतानुसार जलपान कराते है और उसके साथ स्नेह पूर्वक पेश होते है। यह अभिव्यक्ति शिष्टता है। शिष्टता, औपचारिकता नहीं है बल्कि स्वयं में स्थापित मूल्य के अनुभव के लिए सहायक है।

इस प्रकार धर्म नीति–धन, तन और मन के सदुपयोग के आयाम से जुड़ी है। सभी मानव के लिए जागृति ही अंततः प्रयोजन है जो सम्बंध या सामाजिकता से सुलभ होती है। सामाजिकता या सम्बंध का निर्वाह से वस्तु का सुदुपयोग होता है इस प्रकार धर्म–नीति धन, तन और मन से सदुपयोग को स्पष्ट करती है।

अभ्यास व अध्ययन

1. अर्थ नीति को स्पष्ट कीजिए।
2. राज्य–नीति किसे कहते है?
3. धर्म नीति को स्पष्ट कीजिए।
4. सदुपयोग का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

पाठ–22

मानवीय उत्पादन–कार्य: आर्वतनशील कृषि

मानवीय व्यवस्था में समृद्धि के लिए उत्पादन ही एक मात्र कार्यक्रम है। उत्पादन दो प्रकार के होते है प्रथम कृषि एवं द्वितीय उद्योग।

कृषि एक आधार भूत कार्यक्रम है। यह आहार, आवास एवं अलंकार का आवर्तनशील स्रोत है – अर्थात कृषि से प्राप्त सभी उत्पाद आवर्तनशील होते हैं। कृषि से प्राप्त उत्पादनों का प्रयोग दूर दर्शन, दूर श्रवण एवं दूरगमन के यंत्रों में भी होता है। कृषि के उत्पाद आवर्तनशील होने के कारण परम्परा में हर पीढ़ी के लिए समृद्धि की संभावना यथावत बनी रहती है। इसके साथ ही प्रदूषण रहित शुद्ध एवं प्राकृतिक वातावरण बने रहने का उपाय भी है।

अनेक प्रकार के उपकरण, यंत्र उद्योगों से ही प्राप्त होते हैं। ये यंत्र सामान्य आवश्यकता के उत्पादन के लिए प्रयोग में आते है एवं महत्वाकांक्षा के लिए भी। मिट्टी से बने सभी पात्र एवं वस्तुएँ, पत्थर के कार्य, धातु कर्म सभी उद्योगों के श्रेणी में आते हैं। उद्योगों से प्राप्त कुछ उत्पादन आवर्तनशील होते हैं एवं कुछ आवर्तनशील नहीं होते हैं। जो उत्पादन कार्य आवर्तनशील नहीं होते वे प्रदूषण के कारक होते हैं – अर्थात प्रदूषण पैदा करते हैं। प्रदूषण से मानव, पशु–पक्षी एवं अन्न–वनस्पति में रोग पैदा होते हैं। कुछ प्रकार के प्रदूषण अल्पकालीन होते हैं एवं सामान्य प्रयास से आवर्तनशील हो जाते हैं अर्थात प्रदूषण मुक्त होकर शुद्ध वातावरण का भाग बन जाते हैं। कुछ प्रकार के प्रदूषण अतिदीर्घकालीन प्रदूषण पैदा करते हैं – ये आवर्तनशील न होने के कारण पीढ़ी तक समस्या के स्रोत बने रहते हैं। कृषि का अर्थ है प्राणावस्था की इकाईयों का उत्पादन। इसमे मुख्य रूप से आहार, औषधि, रेशा, बॉस एवं काष्ट, उद्योगों में प्रयुक्त होने वाले वनस्पति तेल, गोंद, पत्ते प्रमुख हैं।

आहार – इसमे फल, तरकारी, अन्न, तिलहन, दलहन, कंद–मूल एवं अनेक जलीय वनस्पति जैसे कमल ककड़ी(ढ़ेस), सिंघाड़ा, मखाना आते है।

औषधि – अनेक प्रकार के फल, फूल, पत्ती, कंद–मूल, गोंद, बीज इसमे आते है।

रेशा – रेशे रस्सी एवं वस्त्र के काम में आते हैं। रस्सी के लिए नारियल की बूच, पटसन (जूट), सिसल (रामबॉस) प्रमुख हैं।

वस्त्र के लिए कपास प्रमुख रेशा है। इसके अलावा पटसन, बॉस केले के तने अनानास के पत्ते आदि अनेक वस्तुएँ है जिससे प्राप्त रेशे वस्त्र उद्योग में प्रयुक्त होते हैं।

बॉस एवं काष्ट – ये आवास में प्रयुक्त होते हैं। आवास में प्रयोग आने वाली वस्तुओं में ये सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि ये ठंडी में ठंडे नहीं होते एवं गर्मी में गर्म नही होते ।ये ताप के कुचालक होते हैं। अतः आवास में इसके प्रयोग से प्राकृतिक वातानुकूलित वातावरण बनता है। सभी प्रकार के उपस्कर जैसे पलंग, कुर्सी, मेज में ये प्रयोग किए जाते हैं। मकान की छत भी इससे बन जाती है। काष्ठो में अनेक प्रकार के गुण होते है जैसे कुछ काष्ठ पानी में वर्षो तक डूबे रहने पर भी नहीं सड़ते – जैसे जामुन, गूलर, की लकड़ी। कुछ काष्ठ वर्षों तक धूप–वर्षा को झेलते हैं – इसी गुण के कारण रेल की पटरियों में लम्बे समय तक इनका प्रयोग किया जाता रहा। काष्ठ के गुणों को पहचानकर अनेक उद्योगों में इनका प्रयोग किया जाता हैं।

उद्योगों के लिए – अनेक प्रकार के वनस्पति तेल ईंधन के लिए प्रयुक्त होते हैं। कई वनस्पति तेल घर्षण को कम करते हैं। ये यंत्रो में उपयुक्त होते है। यहाँ प्रधान ध्यानाकर्षण की वस्तु कृषि के उत्पादनों की आवर्तनशीलता हैं। ये पीढ़ी से पीढ़ी तक प्राप्त हो सकते हैं एवं ये प्रदूषण रहित होते हैं।

कृषि में आवर्तनशीलता ही कृषि की स्वायत्तता है। स्वायत्त कृषि प्रणाली ही मानव परम्परा में उपयोगी होती है। इसमे 5 प्रकार की स्वायन्तता अनिवार्य होती हैं।

1. बीज स्वायत्तता
2. खाद स्वायत्तता
3. कीट नाशक स्वायत्तता
4. जल स्वायत्तता
5. ईंधन स्वायत्तता

बीज स्वायत्तता : कृषि में प्रमुख होने वाले 5 प्रकार के वस्तुएँ जल, ईंधन, बीज, खाद एवं कीटनाशक अनिवार्य हैं। इनमे बीज प्रथम है। बीज स्वायत्तता का अर्थ है किसान स्वयं बीज का

भी उत्पादन करें। बीज की गुणवत्ता उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक प्रकार के कृषि उत्पादन में कई प्रजाति के बीज होते हैं। उदाहरण के लिए धान के बीज को लिया जाए तो 90 दिन से 160 दिन तक में पकने वाले बीज पाए जाते है – ये सभी छत्तीसगढ़ अंचल में बोए जाते हैं। इसमे दूसरी वितिधता लम्बाई की है ये 2 फीट से कम ऊँचाई के हो सकते है एवं 8 फुट ऊँचे भी हो सकते हैं। इसी प्रकार ढाल भूमि में अन्य प्रजाति के धान होते है एवं गहरे भूमि में जहाँ पानी स्थिर या जमा रहता है वहाँ अन्य प्रजाति के धान होते हैं। इस प्रकार कृषक अपने भूमि एवं जलवायु के अनुसार धान के बीज का चयन करता है। प्राणावस्था की इकाई बीजानुषंगी व्यवस्था है। अर्थात बीज के अनुसार पौधा एवं पौधे के अनुसार बीज होता है। यही इसकी आवर्तनशीलता है। इसमें व्यवधान होना कृषि परम्परा के लिए घातक है। वह प्रजाति विलुप्त हो सकती है।

कई बीज कंद या कलम के रूप में होते हैं। विशेषकर कलमी प्रजाति के फल वृक्ष। इसमे कलम के अनुसार वृक्ष की प्रकृति होती है। इसी के अनुसार फल लगने की आयु, अवधि तक फलन होना निश्चित होता है।

खाद स्वायत्तता : कृषि उत्पादन में खाद की महत्वपूर्ण भूमिका है। विभिन्न प्रकार के फसलों के लिए विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। ये पोषक तत्व खाद या उर्वरक से मिलते हैं। खाद के लिए पशुपालन एक आवश्यक भाग है। यही पशुपालन का प्रधान उद्देश्य है। वनस्पतियों के पत्ते एवं जड़ भी दूसरे फसलों के लिए उर्वरक का कार्य करते हैं। इस प्रकार अनुकूल फसल चक्र को पहचान कर भी खाद स्वायत्तता को स्थापित किया जाता है। खनिजो से प्राप्त आवर्तनशील स्रोत भी उर्वरक भी प्रयोग होती है। जैसे– ग्रीष्म ऋतु में सूखने वाले तालाब के कीचड़। तालाब में आस–पास के स्थानों के घुलनशील लवण जमा होते है एवं वनस्पतियों के कुछ अवशेष भी कीचड़ में पाए जाते हैं। ये फसल के लिए खाद तो होते ही हैं, जल स्वायत्तता के लिए भी पूरक होते हैं।

कीटनाशक : वनस्पतियों में कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। इनमे से अधिकांश वातावरण परिवर्तन के कारण होते है जैसे शीतऋतु में बादल होने पर चना, सरसों, अरहर जैसी फसलों में इल्लियॉ आ जाती है। ये कीट फसलों को काफी नुकसान पहुँचाते हैं। अतः प्रत्येक कृषक, स्थान विषेष बने होने वाले वनस्पति को नीरोग रखने में पारंगत होना अनिवार्य है। इस हेतु ऐसे कीटनाशको का प्रयोग आवश्यक हैं जो विषैले न हो एवं आवर्तनशील भी हो। इनमे नीम करंज

जैसी वस्तुएँ होती है इनसे कीटनाशक तैयार करना कृषि का ही एक भाग है।

जल स्वायत्तता : सभी प्राणावस्था की इकाईयाँ जलाश्रित हैं। जल का मुख्य स्रोतावर्षा है। वर्षा के जल को ही जमाकर वर्ष भर उपयोग किया जाता है। स्थान विशेष के अनुसार जलाशय बनाना ही एक मात्र कार्यक्रम है। वर्षा का जल ही कुआ एवं नलकूपों का स्रोत होता है। अतः अपने खेत पर या आस–पास के छोटे नाले, झरने एवं नदी के जल को रोकने का उपाय प्रत्येक कृषक को विदित होने पर कृषि सफल होती है।

ईंधन स्वायत्तता : फसलों की सिंचाई, में ईंधन की आवश्यकता होती है। इसके अलावा कटाई, जोताई एंव कार्य भी ईंधन से होते हैं। प्रत्येक कृषक ईंधन–प्रणाली पर स्वायत्तता होने पर समय पर इन कार्यक्रमों को करता है एवं समृद्धि को अनुभव करता है।

आवर्तनशील ईंधन में धरती की सतह पर पाए जाने वाले स्रोतो को पहचाना एवं उपयोग किया जाता है। इनमे प्रमुख हैं – सूर्य– उष्मा, वायु प्रवाह, जल प्रवाह एवं प्रपात, गोबर गैस, लकड़ी, सूखे पत्ते, वनस्पति तेल। धरती की सतह पर पाये जाने वाले सभी ईधन स्रोत आवर्तनशील होते हैं। उत्खनन द्वारा प्राप्त ईधन आवर्तनशील नहीं होते।

इन प्रकार मानवीय व्यवस्था में समृद्धि के प्रधान कार्यक्रमों में एक आवर्तनशील उत्पादन है। उत्पादन में भागीदारी प्रत्येक मानव का एक अनिवार्य आयाम है।

अभ्यास व अध्ययन

1. उत्पादन कार्य आवर्तनशील होना क्यों आवश्यक है?
2. बाँस और कुछ कास्ठ के उपयोग बताइए।
3. बीज स्वायत्तता क्या होती है और वह क्यों जरूरी है?
4. खाद स्वायत्तता किस तरह होती है? वह क्यों आवश्यक है?
5. कौन से प्रकार के कीटनाशकों का उपयोग फसलों के लिए आवश्यक है? क्यों?
6. जल स्वायत्तता क्यों आवश्यक हैं?
7. ईंधन की आवर्तनशीलता को स्पष्ट कीजिए।

पाठ–23

विनिमय–कोष

विनिमय–कोष, मानवीय व्यवस्था के पाँच आयाम में से एक आयाम है। यह परिवार–व्यवस्था में प्रारंभ होकर, विश्व परिवार व्यवस्था तक क्रियाशील रहता है।

परिवार व्यवस्था में न्याय–सुरक्षा, उत्पादन कार्य एवं विनिमय–कोष – प्रधान कार्यक्रम होते हैं। इन कार्यक्रमों को पूरा करना परिवार का ही दायित्व होता है। अर्थात प्रत्येक परिवार अपनी भौतिक आवश्यकता को पूरा करता ही है, यह अन्य पर आश्रित नहीं होता। इस प्रकार विनिमय–कोष का पहला कोष परिवार व्यवस्था है एवं कोष से अधिक वस्तु का विनिमय होता है। परिवार में सम्बंधों का निर्वाह होना ही न्याय एवं सुरक्षा का प्रमाण है। यह सब स्वायत्त परिवार में होता है। यही मानवीय व्यवस्था की मूल इकाई है।

प्रत्येक मानव चार आयाम में जीता है – ये है 1. व्यवसाय 2. व्यवहार 3. विचार 4. अनुभव

व्यवसाय में मनुष्येतर प्रकृति कें साथ श्रम किया जाता है एवं उसका उद्देश्य उपयोगिता एवं कला मूल्य सम्पन्न वस्तु प्राप्त करना है। मानव–शरीर पर किया गया श्रम भी व्यवसाय के श्रेणी में आता है। यह सेवा कहलाता है। व्यवसाय के 2 भाग हैं उत्पादन एवं विनिमय। इनमें भी प्रधान भाग उत्पादन है । उत्पादन का ही विनिमय होता है। अतः उत्पादन पर विनिमय आश्रित रहता है। अतः उत्पादन एवं विनिमय, मानवीय व्यवस्था में संयुक्त कार्यक्रम है।

विनिमय प्रक्रिया में एक वस्तु को प्रदान करने पर दूसरी वस्तु का आदान होता है। यह आदान समान श्रम मूल्य का होता है। यही विनिमय में न्याय है। यदि प्रदान के साथ आदान न हो, या आदान कम हो, ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति की श्रम–हानि होगी। मानव–शरीर सीमित बल–शक्ति एवं आयु सम्पन्न है। इस लिए श्रम–हानि होना, अतृप्ति का कारण होता है। यही अभाव है, जो समृद्ध न होना ही है।

व्यवहार क्रिया मानव–मानव की परस्परता में सम्पन्न होता है। इसका उद्देश्य स्थापित मूल्यों

का अनुभव एवं शिष्ट मूल्यों को प्रमाणित करना है। शिष्ट मूल्यों के प्रकाशन के समय कभी–कभी वस्तु भी प्रदान किया जाता है या सेवा की जाती है। इस प्रकार के प्रदान के बदले, आदान की अपेक्षा नहीं होती। व्यवहार में शिष्ट मूल्यों के प्रमाण की अपेक्षा रहती है। व्यवहार में भौतिक वस्तु के उपार्जन का उद्देश्य नहीं रहता, व्यवहार मूल्यों के प्रमाण का उद्देश्य रहता है। व्यवहार में 'जीवन' के अनुभव एवं अन्य बलों का प्रकाशन होता है। जीवन बल एवं शक्ति अक्षय होती है। इनका कितना भी व्यय किया जाए– ये कम नहीं होती, बल्कि उसमें परिभार्जन होता है। इसलिए व्यवहार स्वयं की तृप्ति के लिए किया जाता है, वस्तु मूल्य के लिए नहीं।

विचार मानव का एक आयाम है। इसके द्वारा समाधान या समस्या का प्रकाशन होता है। समस्या किसी भी मानव को स्वीकृत नहीं है। समाधान सर्वस्वीकृत है। विचारों के आदान–प्रदान में समाधान को प्रमाणित करना एवं समाधान को पहचानना–स्वीकार करना उद्देश्य रहता है। समाधानित व्यक्ति अपने समाधान को प्रमाणित करता है – स्वयं की तृप्ति के लिए। दूसरा व्यक्ति उसे पहचानता एवं स्वीकार करता है। वह भी स्वयं की तृप्ति के लिए करता है। दोनों के बीच पूरकता है।

विचार (समाधान) के आदान–प्रदान में किसी भी वैचारिक शक्ति या सामर्थ्य का क्षय (व्यय) नहीं होता। इस क्रम में सम्प्रेषणा एवं प्रकाशन में प्रखरता आती है। यही इस प्रकार के आदान–प्रदान का उद्देश्य है।

अनुभव बल, विचार में समाधान का आधार है। यही शिष्ट मूल्य के प्रकाशन एवं व्यवसाय मूल्य स्थापना का आधार है। अनुभव अक्षय बल होने के कारण सतत वैसा ही बना रहता है।

मानवीय परम्परा में व्यवहार के बदले भौतिक वस्तु, विचार के बदले भौतिक वस्तु या अनुभव के बदले भौतिक वस्तु का आदान–प्रदान नहीं होता। केवल भौतिक वस्तु के बदले में भौतिक वस्तु का आदान–प्रदान होता है। समान श्रम मूल्य की वस्तु के बदले में समान श्रम मूल्य की अन्य वस्तु का विनिमय होता है। यह वास्तव में श्रम–विनिमय है। अनुभव, विचार, व व्यवहार के बदले में वस्तु का आदान–प्रदान होना न्याय संगत नहीं है क्योंकि किस अनुभव के बदले कितने श्रम मूल्य की वस्तु दी जाए इसका आंकलन संभव नहीं है। इसी प्रकार किसी समाधान के बदले में कितने श्रम मूल्य की वस्तु दी जाए इसका भी मापदण्ड संभव नहीं है। ठीक इसी प्रकार किसी व्यवहार के

बदले में कितना धन या श्रम मूल्य दिया जाए यह भी निश्चित करना संभव नहीं है। उदाहरण के लिए कोई आगन्तुक एक स्थानीय व्यक्ति से किसी स्थान का पता या रास्ता पूछता है। उसे रास्ता बताने का मूल्य कितना होगा। अर्थात इस कार्य के लिए कितना धन दिया जाए यह कैसे तय होगा ? ठीक इसी प्रकार कोई आपका अभिवादन करने के लिए नमस्ते कहता है। उस व्यक्ति ने आपका सम्मान किया। इस सम्मान के बदले में आप कितने रूपये देकर तृप्ति होंगे ? वह व्यक्ति कितने रूपये लेकर तृप्ति होगा ? इसका मापदण्ड संभव नहीं है। अतः अनुभव विचार व व्यवहार के बदले में भौतिक वस्तु की गणणा संभव नहीं है।

जबकि वस्तु विनिमय में प्रत्येक वस्तु का श्रम मूल्य गणणा किया जा सकता है, अतः श्रम विनिमय होता है। अनुभव, विचार, भाषा, शिष्टता एक पीढ़ी से दूसरी–पीढ़ी तक परम्परा सहज विधि से पहुँचते रहते हैं। यही दायित्व का निर्वाहन है। यही मानवीय परम्परा का आधार है। दायित्व वहन उपकार विधि से ही संभव है। प्रतिफल विधि से यह संभव नहीं है।

अभ्यास व अध्ययन

1. विनिमय प्रक्रिया में अत ति कब होती है?
2. "अनुभव, विचार व व्यवहार के बदल में वस्तु का आदान–प्रदान होना न्याय संगत नहीं है।" इसे स्पष्ट कीजिए।
3. श्रम विनिमय क्या होता है?

पाठ–24

न्याय सुरक्षा

मानवीयता पूर्ण आचरण ही न्याय है। न्याय स्वयं सुरक्षा का स्वरूप है। अर्थात दो व्यक्तियों में न्याय होने पर दोनो एक दूसरे की सुरक्षा के लिए तत्पर होते हैं। इसी प्रकार परिवार में सभी मानवीयता पूर्ण आचरण करने पर परिवार में व्यवस्था होती है। न्याय का न होना ही अन्याय है। न्याय का अभाव अन्याय कहलाता है।

किसी घटना में दो पक्षों की असंतुष्टि अन्याय कहलाता है। असन्तुष्टि का कारण दोनों पक्षों में से कोई एक या दोनों पक्ष द्वारा व्यवहार के नियमों की उपेक्षा करना अथवा व्यवहार के नियमों का पालन न करना ही है। व्यवहार के नियमों का पालन न करना, भ्रम वश या अज्ञान वश ही होता है। इस प्रकार की स्थिति में किसी तीसरे पक्ष का सहयोग या प्रेरणा को स्वीकार किया जाता है। ऐसी स्थिति में दंड का प्रावधान किया जाता है। दंड एक पक्ष या दोनो को करने का कार्यक्रम है। पीड़ा किसी भी मनुष्य को स्वीकार नहीं है। इस प्रकार दण्ड किसी को स्वीकार नहीं होता, दबाव पूर्वक ही इसे कराया जाता है। इस प्रकार के कार्यक्रमों में असन्तुष्टि का शमन नहीं होता, असन्तुष्टि बढ़ती ही जाती है। इसे अन्याय श्रृंखला का प्रारंभ भी कहते हैं।

इसका उन्मूलन ही निदान है। उन्मूलन भ्रम का ही होता है। भ्रम उन्मूलन का नाम समझदारी या जागृति है। यह शिक्षा–संस्कार विधि से सफल होता है।

जागृति का तात्पर्य न्याय में या मानवीयता पूर्ण आचारण में निष्ठा होना है। मानव समाज में न्याय का स्वरूप एवं न्याय में जीने की अनिवार्यता स्पष्ट होना ही न्याय में निष्ठा है। जब तक न्याय का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता या न्याय में जीने की अनिवार्यता स्पष्ट नहीं होती, न्याय में निष्ठा नहीं होती।

न्याय में जीने का स्वरूप सम्बंध को पचानना है। सम्बन्धों को पहचानना संस्कार है। मानव के सम्बंध दो प्रकार से गण्य है :–

1. मानवेतर प्रकृति के साथ सम्बंध

2. मानव प्रकृति के साथ सम्बंध

3.

प्रत्येक सम्बंध में मूल्य निहित रहता ही है। अस्तित्व में सम्बंध विहिन कोई इकाई नहीं है एवं मूल्य विहिन कोई भी सम्बंध नहीं है। प्रत्येक इकाई, अन्य इकाइयों के साथ सम्बन्धित है। अकेले में इकाई की कोई पहचान नहीं होती, अकेले इकाई का कोई प्रमाण भी नहीं होता। सम्बंध निश्चित होता है – यह बदलता नहीं है। प्राकृति के मानवेतर तीन अवस्था में इसे पहचान सकते हैं। जैसे – वनस्पति एवं वायु का सम्बंध। वनस्पति एवं जल का सम्बंध। इसे प्रत्येक इकाई में पहचान सकते हैं।

इसी प्रकार मानव का, मनुष्येतर प्रकृति के साथ सम्बंध निश्चित है। मानव का मानव से भी सम्बंध निश्चित है। यह सम्बंध पूरकता ही है। पूरकता पहचानना ही समझदारी है। पूरकता को स्वीकार करना ही संस्कार है।

जैसे शिशु एवं माता के साथ पूरकता निश्चित है। इसे शिशु एवं माता दोनो पहचानते हैं एवं उसके अनुरूप आचरण करते हैं तो दोनो तृप्त होते हैं। यह तृप्ति न्याय कहलाता है। इसी प्रकार भाई–बहन गुरू–शिष्य, पति–पत्नी, मित्र सम्बन्ध में भी पूरकता निश्चित होती है। प्रत्येक सम्बंध का मूल तत्व उसकी पूरकता है।

इस प्रकार मानव, मानव के बीच न्याय होना तृप्ति है। तृप्ति के लिए पूरकता ही पहचान होना, पूरकता को स्वीकार करना, पूरकता को पूरा करने की योग्यता होना एवं पूरकता का निर्वाह करना– ये अनिवार्य चरण है। शिक्षा–संस्कार प्रक्रिया द्वारा इन चारों चरणों को पूरा करने की योग्यता विकसित होती है।

सम्बंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन एवं उभय तृप्ति को न्याय की संज्ञा है। मूल्यांकन सम्बन्ध में निहित पूरकता के अनुसार होता है। जैसे गुरू–शिष्य सम्बंध में शिष्य के जिज्ञासा का एवं गुरू के प्रामाणिकता का मूल्यांकन होता है।

इस प्रकार चरित्र, मूल्य और नैतिकता का संयुक्त रूप मानवीयता पूर्ण आचरण कहलाता है।

मानवीयता पूर्ण आचरण से प्रत्येक मनुष्य, मानव लक्ष्य को पाता है एवं अन्य सभी व्यक्तियों के लिए मानव लक्ष्य प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त होता है।

अभ्यास व अध्ययन

1. न्याय–सुरक्षा के कौन–कौन से कार्यक्रम हैं?
2. मानवीयतापूर्ण आचरण क्या होता है?
3. अपराध किसे कहते हैं?
4. स्वधन किसे कहते हैं?
5. दयापूर्ण कार्य व्यवहार को स्पष्ट कीजिए।
6. स्वनारी/स्वपुरुष किसे कहते हैं?